चन्दामामा

दीवाली विशेषांक



1st Nov. '54

6 as



जब काशी का राजा ब्रह्मदत्त था, बोधिसत्व एक बड़े जमीन्दार के घर में पैदा हुये। वे जब बड़े हुये तो उनका घराना धन वैभव के कारण और भी प्रतिष्ठित हुआ। उनको कोई कमी न थी। बोधिसत्व का एक भाई भी था।

कुछ समय बाद उनके पिता की मृत्यु हो गई। इस कारण से दोनों भाईयों ने अपनी जमीन्दारी स्वयं देखनी-भालनी चाही; वे इस उद्देश्य से अपने एक गाँव में गये। वहाँ उनको अनाज आदि के अतिरिक्त एक हजार मुहरें नकद कर के तौर पर किसानों से मिलीं।

उन मुहरों को लेकर दोनों भाई काशी नगर के लिये रवाना हुये। उन्हें रास्ते में एक नदी पार करनी थी। चूँकि नाववाले के आने में अभी देर थी, साथ लाया हुआ चबैना खा, उन्होने पानी पिया। बोधिसत्व ने अपने चबैने में से थोड़ा बचा कर आदतन नदी में फेंक दिया।

बोधिसत्व के फेंके हुये चबैने को नदी में रहनेवाले जलभूत ने ले लिया। उसने खुशी-खुशी उसको खाया। उसको खाते ही उसमें सहसा एक दिव्य शक्ति-सी सञ्चरित हुई।

उस दिव्य शक्ति के कारण उसको उस चबैने के बारे में सब कुछ मालूम हो गया। और उसको यह भी पता लग गया कि उसकी सहायता करने वाला कौन था। बोधिसत्व खा पीकर; वहीं रेत पर कपड़ा बिछाकर लेट गये।

भाई की चोरी की प्रवृत्ति थी। उसने सोचा-"चाहे कुछ भी हो, भाई के पास से मुहरों को हथियाना चाहिये।" उसे तुरत एक चाल भी सूझी। उसने ठीक मुहरों की

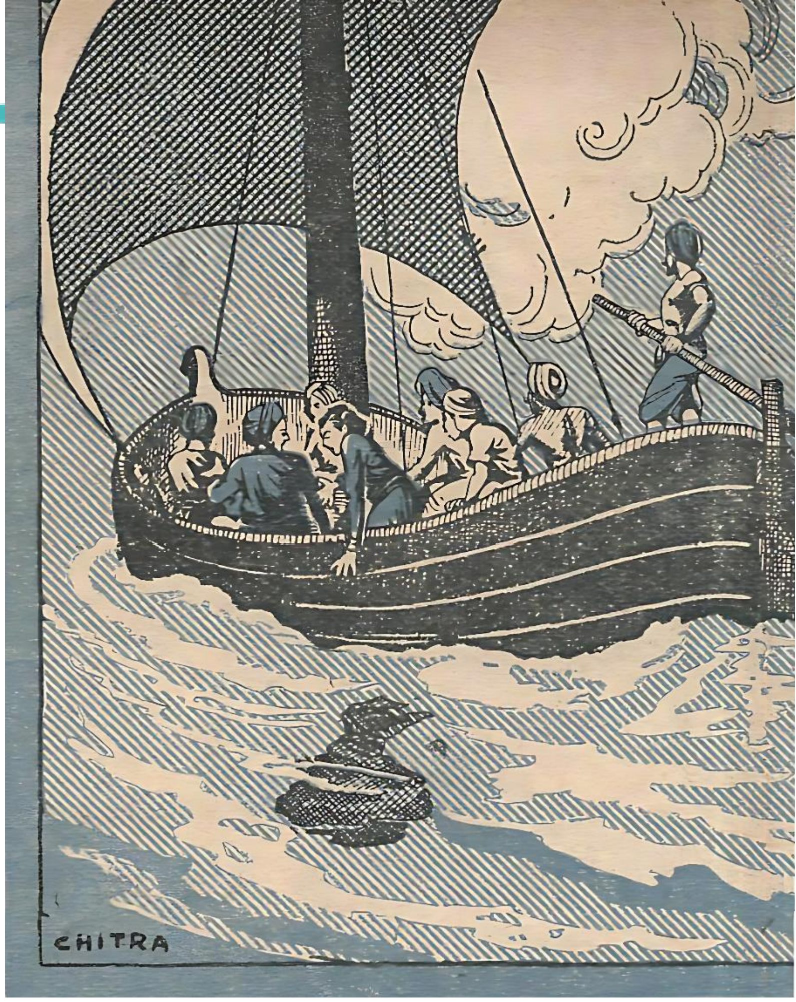
पोटली की तरह पत्थरों की एक पोटली बाँधी। दोनों पोटलियों को भाई की नज़रों से दूर रख दीं।

नाव वाले के आते ही बोधिसत्व जाग गये। दोनों भाई नाव पर चढ़े। नाव ठीक नदी के बीचों बीच गई। अपनी चाल के अनुसार छोटे भाई ने पोटली को नदी में धीमे से छोड़ना चाहा। क्योंकि वह चोरी का काम कर रहा था, उसका हाथ काँपने लगा, काँपते काँपते हाथों से उसने एक पोटली नदी में खिसका दी। फिर हल्ला करने लगा:-

"अरे बाप रे बाप, मुहरों वाली पोटली नदी में गिर पड़ी है।"

यह सुन बोधिसत्व ने आश्वासन देते हुये कहा-"कोई बात नहीं भाई ! अब भला हम कर ही क्या सकते हैं ? मान लो कि वह हमारा धन नहीं था। अब उसके बारे में रोने पीटने से क्या फायदा ? जो हो गया सो हो गया।"

बोधिसत्व के दिये हुये चबैने को जलभूत खा गया था न ? उसको उसी समय एक प्रकार की दिव्य शक्ति भी मिल गई थी न ? तब से



वह इस प्रतीक्षा में था कि बोधिसत्व का ऋण कैसे उतारा जाय।

अब इस पोटली के पानी में गिरते ही जलभूत को मालूम हो गया था कि वह मुहरों वाली पोटली है। वह छोटे भाई की चाल भी ताड़ गया। जलभूत ने तुरन्त एक बड़े मुख वाले मछली को उस पेटली को निगलने के लिये कहा। मछली ने पोटली निगल ली। कहीं ऐसा न हो कि मछली आँख बचा कर कहीं निकल जाय, जल भूत चौकन्ना हो उसकी निगरानी स्वयं करने लगा।



एक दो दिन बाद बोधिसत्व और उनके भाई काशी नगर वापिस आ गये। मुहरों की पोटली के नदी में गिर जाने के बाद बोधिसत्व एकदम वह घटना भूल-से गये थे। वे भाई की तरह धन के लालची न थे।

घर जाते ही, छोटे भाई ने सन्तोष और आकुलता के साथ, अपने पास वाली दूसरी पोटली को खोल कर देखा। वह देखता क्या है कि उसमें उसी के बाँधे हुये पत्थर ही थे। और कुछ न दिखाई दिया। उसको अपनी की हुई गलती मालूम हो गई। उसको ऐसा लगा जैसे उसका दिल टूट गया हो। उसी फिक्र में उसने खटिया पकड़ी। बीमारी बढ़ती गई।

इस बीच में, मछियारों ने नदी में मछलियों के लिये जाल फेंके। जल भूत ने अपनी दिव्य शक्ति से, उस मछली को, जिसने मुहरों की पोटली निगली थी, जाल में फँसवा दिया। मछियारे उस मछली को बेचने शहर में ले गये। सब उनसे पूछने लगे- "इसका दाम कितना है ?"

एक हजार मुहरों के ऊपर एक और मुहर -- यानी एक हजार एक मुहरें।" मछियारों ने जवाब देना शुरु किया।

मछियारों की बात सुन सब मजाक करने लगे-"मालूम है इस मछली का दाम कितना है? एक हजार मुहरें। जैसे वह काफी नहीं हो, वे उस पर एक और मुहर चाहते हैं। हमने तो ऐसी बात न देखी है न सुनी है।"

मछियारे उस मछली को बोधिसत्व के पास बेचने ले गये।

"इसका दाम कितना है ?" बोधिसत्व ने पूछा।

"यदि आप लेना चाहते हैं तो केवल एक मुहर।" मछियारों ने जवाब दिया।

"औरों को कितना दाम बता रहे हो?" बोधिसत्व ने फिर आश्चर्य से मछियारों से पूछा।

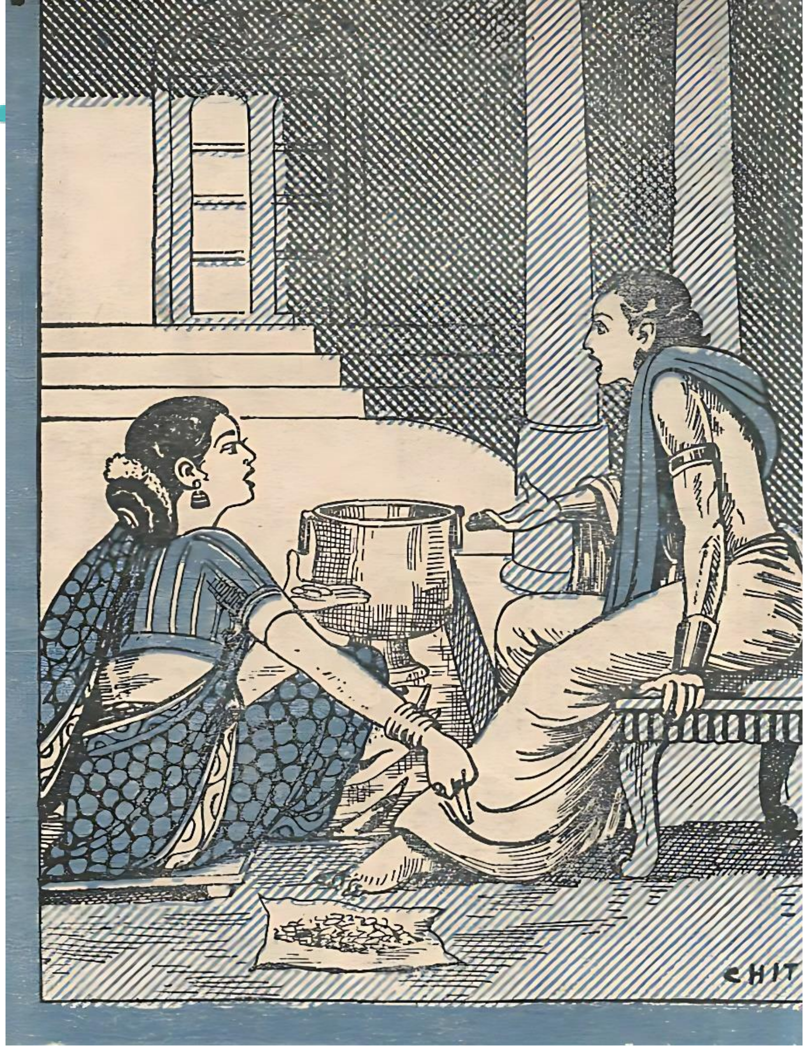
"अगर कोई और हुआ तो उससे हम एक हजार मुहरें और उसके ऊपर एक और मुहर लेंगे। परन्तु आप से केवल एक मुहर ही लेंगे।" मछियारों ने कहा।

तुरन्त बोधिसत्व ने एक मुहर देकर उस मछली को खरीद लिया। जब उन्होंने और उनकी पत्नी ने मिल कर मछली को काटा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। मछली

के पेट में एक पोटली थी। उसमें ठीक एक हजार मुहरें थीं। गौर से देखने पर उनको पता लगा कि वह पोटली भी उन्ही की बाँधी हुई थी।

तब बोधिसत्व ने जो कुछ गुजरा था, पत्नी को इस प्रकार बताया-

"यह मुहरों की पोटली हमारी ही है। मैं जब अपने गाँव से कर वसूल करके ला रहा था तो शायद यह नदी में गिर गई होगी। पोटली को निगलनेवाली मछली इन मछियारों के हाथ लगी। यह तो ठीक है; पर ये मछियारे मामूली मछियारे नहीं हैं। लगता है इनके पास दिव्य-ज्ञान है।



चूँकि उनको ठीक तरह मालूम था कि इस मछली के पेट में एक हजार मुहरों की पोटली है और वह मेरी है। इसी कारण वे इसका दाम सब को एक हजार मुहरें और ऊपर से एक और मुहर बताते आ रहे थे। मुझे उन्होंने सिर्फ एक मुहर ही बताया। ऊपर से माँगी हुई मुहर उनकी मेहनत के लिये थी।

यह जान कर कि ये मुहरें मेरी है वे मुझे दे गये हैं और अपनी मेहनत का फल भी मुझसे उन लोगों ने ले लिया है। देखा, उनका किया हुआ काम कितना युक्ति युक्त

है। परन्तु जिन लोगों ने मछली के लिये भाव-ताव किया था उन सब को यह बात क्या मालूम ? इसी कारण वे ठठा मार कर हँस कर चले गये।" यह कह बोधिसत्व बैठ कर यह सेचने लगे कि मछियारों के पास इतनी दिव्य-शक्ति कैसे आई? उनको यह कैसे मालूम हुआ ?

सोचते हुये बोधिसत्व को एक दिव्य-वाणी सुनाई दी-"महाशय ! मैं नदी में रहनेवाला जलभूत हूँ। आप को क्या याद है, उस दिन आप ने खा पीकर बचा खुचा चबैना भूत की तृप्ति के लिये नदी में फेंक दिया था ? उस प्रसाद को खाते ही मुझमें अपूर्व दिव्य शक्ति आ गई। उसी कारण आपके बारे में मैं सब कुछ हमेशा जानता आया हूँ।

पानी में पड़ी मुहरों की पोटली को मैने ही मछली से निगलवाया था। मेरी ही प्रेरणा पर मछियारे उस मछली को आपके पास लाये थे। आप ने मुझे प्रसाद दिया था। इसलिये मैंने सावधानी से आपकी मुहरों की पोटली को आपको वापिस देकर मैंने ऋण चुका लिया है। यह आपका धन है; आप ही ले लीजिये। परन्तु इसमें से एक पेसा भी अपने भाई को मत देना।" तब जलभूत ने भाई के किये हुये धोखे के बारे में सब-कुछ साफ साफ बोधिसत्व से कहा।

जलभूत के किये हुये उपकार और हितोपदेश की बोधिसत्व ने बहुत प्रशंसा की। परन्तु जो उसने उनके भाई के बारे में बात कही थी उन्होंने न मानी। यह मालूम होने पर भी कि उनका भाई चोर है उन्होंने उसकी परवाह नहीं की। यही नहीं, भाईचारे के अनुसार उन्होंने एक हजार मुहरों में से पाँच सौ मुहरें भाई को देकर, अपना भातृ प्रेम दिखाया।

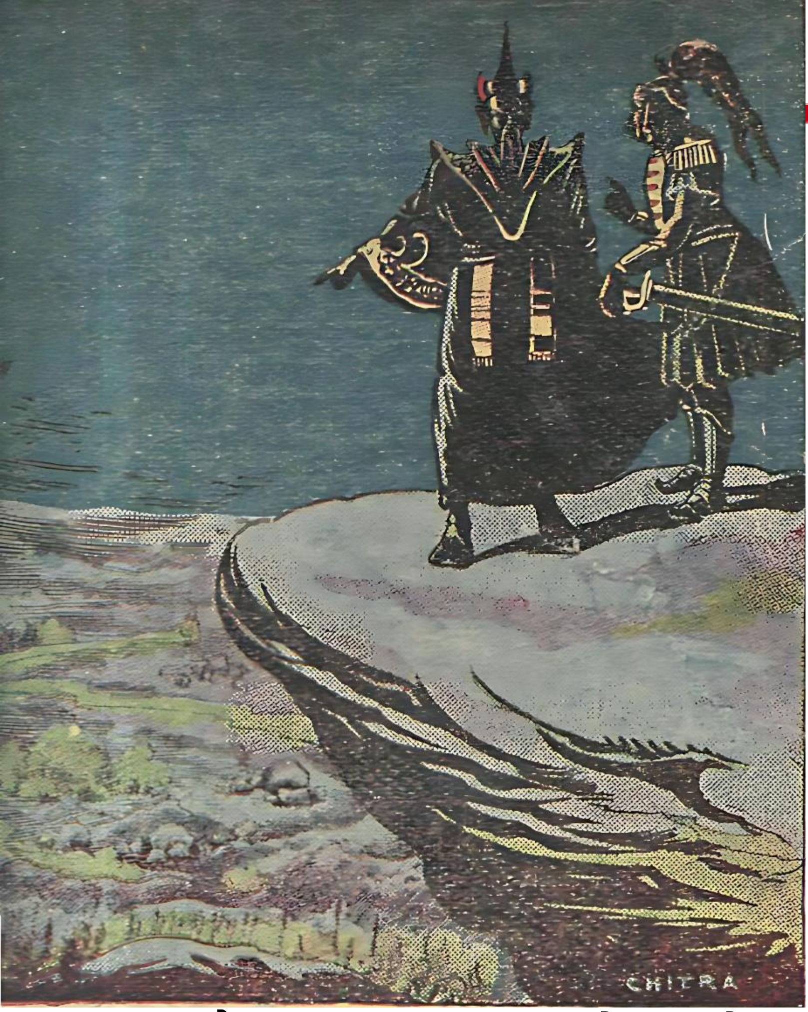




चतुर्नेत्र अभी एकाक्षी की दुष्टता के बारे में कह ही रहा था कि पहाड़ की तराई से कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। समरसेन और उसके सिपही उस ओर मुँह फेर कर गौर से सुनने लगे।

तब सूर्य को छुपे हुये कुछ ही समय हुआ था। उस पर्वत प्रदेश में धीमे धीमे अन्धेरा छा रहा था। समरसेन को, सिवाय इसके कि तराई में कुछ आदमी चिल्ला रहे हैं और कुछ न मालूम हुआ। वह यह न जान सका कि वे किस तरफ बढ़ रहे थे। इतने में एकाक्षी का कर्कश स्वर सुनाई दिया। "कालसर्प ! कपाल !" वह चिल्ला रहा था।

चतुर्नेत्र ने झट उस तरफ देख कर कहा-"समरसेन ! एक तरफ से तुम्हारे कुण्डलनी के लोग चले आ रहे हैं और दूसरी तरफ से एकाक्षी आ रहा है। नाव



और नागकन्या की बात तो बाद में सुनना। पहले उन लोगों की नज़र बचा कर भाग जाना अच्छा है।"

समरसेन भी जान गया कि उस हालत में इसके अतिरिक्त कुछ नहीं किया जा सकता था। 'कुण्डलनी के लोग' कहते ही समरसेन समझ गया कि चतुर्नेत्र का मतलब कुम्भाण्ड और उसके जङ्गली साथियों से था।

"देखो ! वे लोग इसी तरफ चले आ रहे हैं। पहाड़ पर चढ़ रहे हैं।" चतुर्नेत्र ने पहाड़ की तराई की ओर अंगुली दिखाते हुये कहा। समरसेन और उसके सैनिकों ने भी उस तरफ देखा। लगभग पचास साठ आदमी मशाल लिये, चिल्लाते हुये पहाड़ पर चढ़ रहे थे।

"अब हमें क्या करना चाहिये ?" समरसेन ने पूछा। "यदि अकेला कुम्भाण्ड और उसके साथी होते तो मैं अपने पाँच सिपाहियों के साथ उनका मुकाबला कर सकता था। हमारे सधे हुये सिपाहियों की बाणवर्षा के सामने ये जङ्गली न टिक सकेंगे। परन्तु एकाक्षी के बारे में...."

"खैर, एकाक्षी को मेरे जिम्मे छोड़ दो। मैं उसको देख लूँगा। मगर एक बात याद रखना। तेरा कुम्भाण्ड से भिड़ना, इस अन्धेरे में शायद अच्छा न हो। अगर वे लोग एकाक्षी की नज़र में आ गये तो जो तू करना चाहता है वह वही कर देगा।"

चतुर्नेत्र का कहना ठीक है; यह जानने के लिये अधिक देर न लगी। एकाक्षी ने शोर शरावा करते आते हुये उत्साही जङ्गलियों का और उनके नेता कुम्भाण्ड का रास्ता रोका।

"यह बात है ! मैं इस क्षण की न जाने कब से प्रतीक्षा कर रहा था।" समरसेन ने अत्यन्त सन्तोष के साथ कहा। परन्तु चतुर्नेत्र ने सिर हिलाते हुए कहा-

"समरसेन ! जल्दी में ऊँटगटाङ्ग उम्मीदें मत बाँधो। धन राशी से भरी नाव और नागकन्या के बारे में अभी तुझे पूरी तरह नहीं मालूम है। उनसे सम्बन्धित गूढ़ रहस्य, आखिर मैं तुझे भी पहले नहीं बता सकता। इसके अलावा, एकाक्षी जरूर घमण्डी है, पर वह अनाड़ी नहीं है। वह जो बड़ी चट्टान दिखाई दे रही है, आओ, उसके पीछे छुप जायें।"

अन्धेरे में समरसेन और उसके सिपाही लड़खड़ाते हुये चतुर्नेत्र के पीछे चले। कुछ ही देर में वे सब के सब जहाँ कुम्भाण्ड और उसके जङ्गली साथी थे, उसके पास, एक बड़ी चट्टान के पीछे छुप गये।

एकाक्षी को देखते ही कुम्भाण्ड डर के मारे काँप उठा। उसको देख कर जङ्गली लोग भागने को तैयार हो ही रहे थे कि एकाक्षी ने आज्ञा दी-"अगर तुम अपनी जगह से हिले तो मौत से न बच सकोगे। मेरी नजर में आये हुये व्यक्ति बिना मेरी आज्ञा के हिल भी नहीं सकते। कालसर्प! कपाल ! इन लोगों को घेर लो।" तुरन्त कालसर्प फुँफकारता हुआ जङ्गलियों के चारों ओर





"और जा कहाँ रहे हो ?" एकाक्षी ने आँखें लाल करते हुये पूछा।

कुम्भाण्ड को लगा कि बिना सच कहे पिण्ड न छूटेगा। अगर उसने झूठ भी बोला, तो साथ के जङ्गली जानवर डर के मारे सच कह देंगे, कुम्भाण्ड ने सोचा।

"सुना है इस पहाड़ की चोटी से समुद्र में एक नाव दिखाई देती है। उसे देखने के लिये ही हम इस तरफ जा रह हैं।" कुम्भाण्ड ने भय से काँपते हुये कहा।

यह बात सुनकर एकाक्षी ने अट्टहास किया। उसको अच्छी तरह मालूम था कुम्भाण्ड और उसके साथी वहाँ क्यों जा रहे थे।

घूमने लगा। कपाल हवा में उनके सिरों कि के ऊपर मँडराने लगा।

"तुम कौन हो ? कहाँ जा रहे हो ?" एकाक्षी ने गरज कर पूछा।

इस प्रश्न को सुनते ही कुम्भाण्ड घबरा गया। उसको यह न सूझा कि सच कहा जाय, या झूठ कह कर बाहर निकला जाय।

उसने जङ्गलियों के मुख उस द्वीप में रहने वाले मान्त्रिकों के विषय में सुन तो रखा था पर वह पहिली ही बार एक को देख रहा था।

मैं इन जङ्गलियों का राजा हूँ। मेरा नाम कुम्भाण्ड है।" वह सिर्फ इतना ही कह पाया।

"यानी, इस अन्धेरे में तुम सिर्फ नाव देखने के लिये ही इस पहाड़ की चोटी पर चढ़ रहे हो ? ओहो, तुम्हारी अक्ल गज़ब की है। तुम तो इस जङ्गलियों के राजा के बदले देवताओं के इन्द्र होने लायक हो। सच कहो। तुम उस नाव में रखे हुये धन राशी को लूटने के लिये ही तो जा रहे हो ?" एकाक्षी ने साफ साफ पूछा।

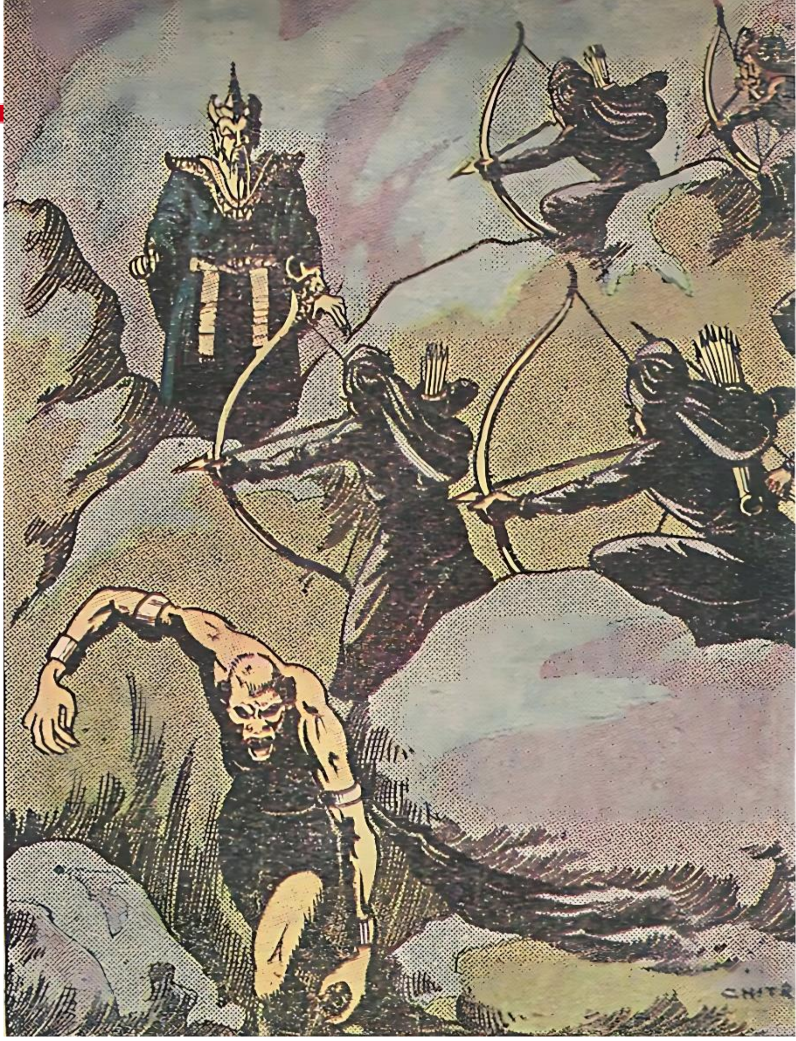
थोड़ी देर कुम्भाण्ड हाथ मलता मलता खड़ा रहा। उसको कुछ न सूझा। "कहो

इस काम के लिये जा रहे हो कि नहीं ?" एकाक्षी ने फिर गरज कर पूछा। कुम्भाण्ड ने घबराते हुये कहा 'हाँ'। तब एकाक्षी ने धीमे धीमे कहा।

"इस द्वीप में मैंने पाँच छः आदमियों को देखा था। उनकी पोशाक भी तेरी पोशाक की तरह थी। वे भी तेरी तरह उस नाव के धन को लूटने के लिये ही शायद निकले हैं। तू भी क्या उसी गुट का है ?"

कुम्भाड जान गया एकाक्षी ने किनको देखा था। उससे पहले आये हुये समरसेन और उसके सैनिकों से एकाक्षी का मतलब था, कुम्भाण्ड ने अनुमान किया। यह जानते ही उसको गुस्सा आया और ड़र भी लगा। उसने सोचा जब तक वह उनका काम तमाम नहीं कर देगा, तब तक उसकी जान का खतरा बना ही रहेगा।

"वे कौन है, यह मुझे मालूम है।" कुम्भाण्ड ने क्रोध के साथ कहा। यह जान कर कि वे इस द्वीप में हैं, मैं उनको मारने के लिये उनका पीछा करते हुये आया हूँ। वे धन के लालची हैं। वे जरूर इस नाव की खोज में होंगे, यही सोचकर मैं इस तरफ आया हूँ। रस्ते में आप मिल गये।" कुम्भाण्ड इस तरह सच को छुपाने की कोशिश कर रहा था।



चतुर्नेत्र उनकी बातचीत को ध्यान से सुन रहा था। उसने सोचा यह अच्छा मौका है।

"उलूक, नरवानर !" उसके कहते ही दोनों आगे की ओर लपके। समरसेन और उसके सिपाहियों ने भी धनुषों पर बाण चढ़ाकर जङ्गलियों पर बाण वर्षा शुरू कर दी।

"उलूक" सुनते ही एकाक्षी ने आश्चर्य से चारों तरफ देखा। जिन जङ्गलियों को बाण लगे थे, वे नीचे गिर पड़ें। कुम्भाण्ड



भी जान बचाकर पहाड़ की तराई की ओर भागने लगा।

जान बचाकर भागते हुये कुम्भाण्ड और जङ्गलियों का पीछा समरसेन और उसके सिपाही करने लगे। अन्धेरे के कारण सैनिक निशाना लगाकर बाण न छोड़ सके। "ठहरो, ठहरो" कुम्भाण्ड चिल्ला चिल्ला कर जङ्गलियों को रोकने की कोशिश कर रहा था।

और इधर एकाक्षी ने जो “उलूक ” का नाम सुनते ही अचम्भे में पड़गया था, सम्भल कर, तलवार लेकर, एक दो कदम आगे आकर दाँत कटकटाते हुये कहा-

"अब मालूम हो गया कि तू एकदम बुडबुक है। जिसको कि यह घमण्ड था कि मन्त्र तन्त्र में उससे बढ़कर कोई नहीं है, इन मनुष्यों के बाणों से वह मुझे जीतने की कोशिश कर रहा है। तेरे दोस्तों की हड्डी पसली एक करने के लिये ये जङ्गली काफ़ी हैं।"

चतुर्नेत्र एकटक कुछ देर तक एकाक्षी की तरफ देखता खड़ा रहा। पहाड़ की तराई में कुम्भाण्ड का चिल्लाना और जङ्गलियों का शोर शराबा सुनाई पड़ रहा था। चतुर्नेत्र



को लगा कहीं ऐसा न हो कि समरसेन और उसके सिपाही आफ़त में न फँस जाय। उसने सोचा तुरन्त वहाँ जाना ही अच्छा है।

"एकाक्षी ! तेरे ऊटपटाँग सवालों का जवाब देने के लिये मेरे पास समय नही है। इसके अतिरिक्त हमारे भृत्यों के आपस में लड़ने भिड़ने से भी कोई फायदा नहीं है। यह भी तुझे मालूम है कि तेरी तलवार कटार, मेरा बाल बाँका नहीं कर सकते हैं। एक दिन आयेगा; तब या तो तू रहेगा नहीं तो मैं। तबतक महज बातों से कोई लाभ नहीं।" चतुर्नेत्र ने कहा।

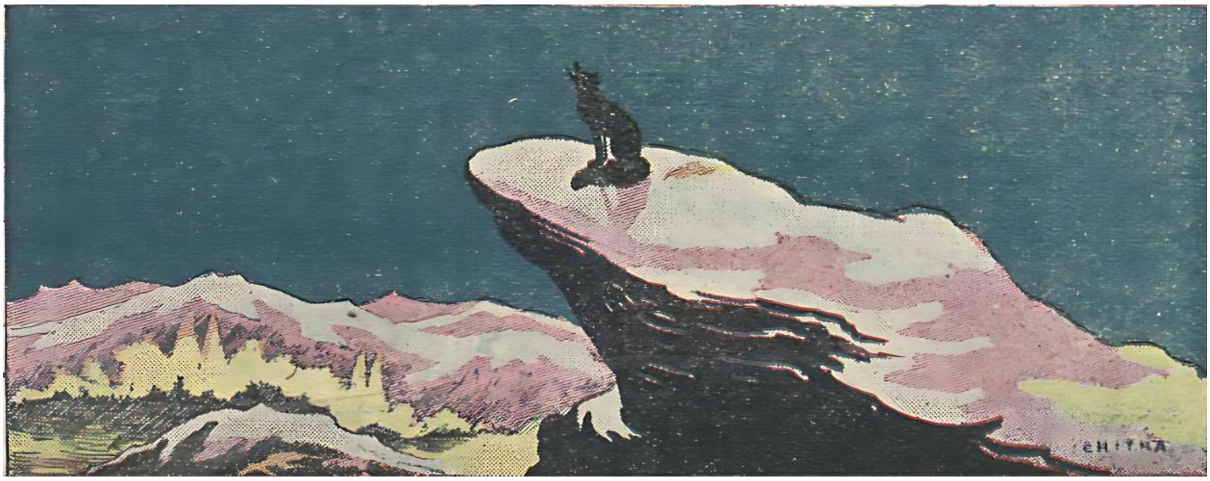
उसने अपनी टोपी हाथ में ली और झट वहाँ जा पहुँचा जहाँ समरसेन और कुम्भाण्ड तलवार लेकर घमासान युद्ध कर रहे थे। एक तरफ जङ्गली भाले लिये हुये आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे थे और दूसरी तरफ समरसेन के सैनिक बाण वर्षा कर उनको घायल कर उन्हें आगे बढ़ने से रोक रहे थे।

इधर समरसेन और कुम्भाण्ड में युद्ध चल रहा था, और उधर चाँद निकल आया था और सर्वत्र चान्दिनी फैली हुई थी। कुछ जख्मी जङ्गली हाहाकार कर रहे थे। वह सारा का सारा ईलाका उनकी आह, कराहटों से गूँज रहा था।

चतुर्नेत्र सोच रहा था कि अब क्या किया जाय। उसको मालूम था कि थोडी देर में वहाँ एकाक्षी भी आ पहुँचेगा। इसलिये इस बीच में, कुम्भाण्ड और जङ्गलियों कोमार देने में ही भलाई है। अगर वे न मारे जा सके, तो खैरियत इसी में है कि समरसेन और उसके सिपाही किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिये जाय।

परन्तु इतने में भेड़ियों का भयङ्कर चिल्लाना सुनाई दिया। चाँदनी रात ! भेड़ियों के झुण्ड, खून की गन्ध पा उस तरफ भागे आ रहे थे।

भेड़ियों का पेड़ पौधों को चीरते हुये, चट्टानों पर से छलाँग मारते हुये आना सब ने देखा। युद्ध कर शत्रु को मारने से पहिले, उन्हें भय लगा कि भेड़ियों के झुण्ड उनका ही काम तमाम कर देंगे। झट सैनिकों और जङ्गलियों ने वहाँ से भागना शुरू किया। समरसेन और कुम्भाण्ड भी लड़ना छोड़, जिस तरफ उनके अनुचर भागे जा रहे थे, उनके पीछे पीछे भागने लगे। (अभी और है)





गङ्गा नदी के किनारे स्थित रामनगर राज्य का एक राजा हुआ करता था। उसके दो लड़कियाँ थीं और एक लड़का था। उसका मन्त्री, जिसका नाम वक्रबुद्धि था; स्वयं राज्य हड़प लेना चाहता था। इसलिये उसने राजा की हत्या करवा दी और उसकी सन्तान को काल कोठरी में बन्द करवा दिया। बाद में वक्रबुद्धि ने दोनों राजकुमारियों को मृत्यु के घाट उतरवा दिया। पाँच साल के राजकुमार प्रमोद की हत्या भी उसने करवानी चाही, परन्तु इस बीच में एक विचित्र घटना घटी।

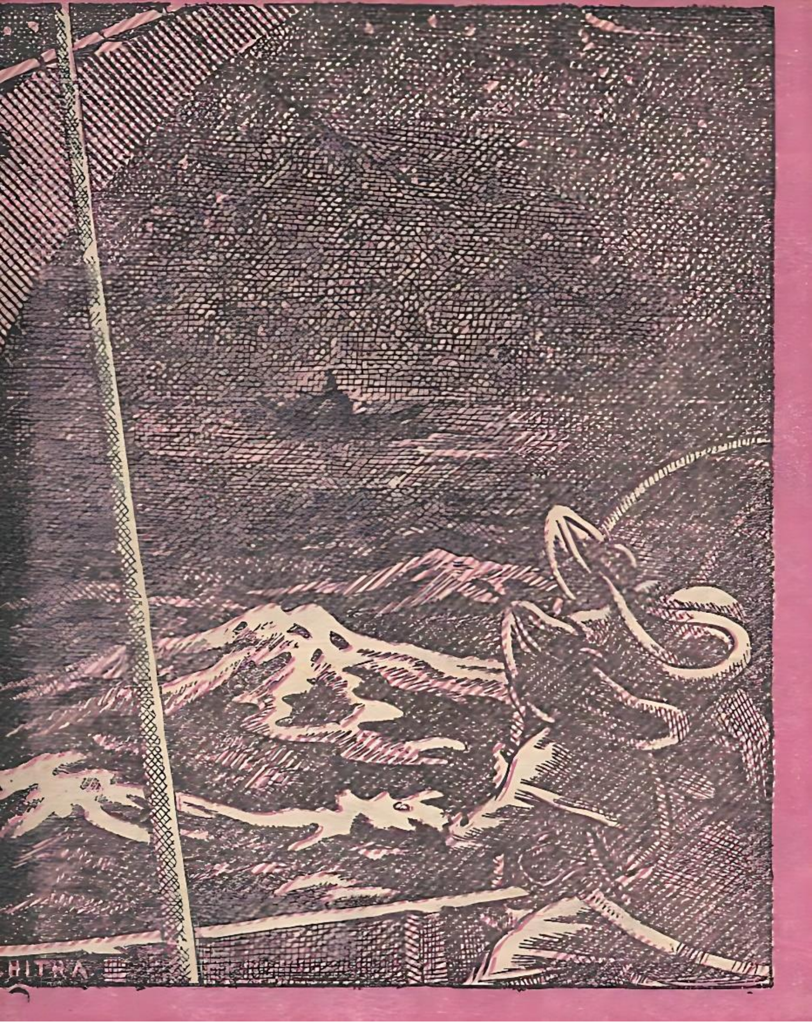
रात के समय, जब हत्यारे काल कोठरी में घुसे, एक कोने में प्रमोद को सोता देख कर वे डर गये। इसका कारण यह था कि उस बच्चे का शरीर काल कोठरी में प्रकाश से चमक रहा था।

"इस बच्चे को मारने के लिये हममें हिम्मत नहीं है।" कहते हुये हत्यारे वहाँ से भाग गये।

वक्रबुद्धि को कुछ समझ में न आया। उसने सुमित्र नाम के मछियारे को बुलाकर कहा "जैसा मैंने कहा अगर तूने वैसा किया तो तुझे बहुत-सा धन दूँगा, अगर न किया तो सिर कटवा दूँगा।"

गरीब सुमित्र ने चक्रबुद्धि के कहने के अनुसार काम करना मान लिया। वक्रबुद्धि ने राजकुमार प्रमोद को कपड़े से ढक कर एक गट्ठर-सा बाँधवा दिया। सुमित्र को काल कोठरी में ले जाकर उसने कहा- "इस गट्ठर को तू नाव में ले जाकर, इसके साथ एक भारी पत्थर बाँधकर, आधी रात के समय, काशी के पास गङ्गा में छोड़ देना। जा, इस गट्ठर को जल्दी ले जा।"

ज्योत्स्ना मल्लिक



सुमित्र ने गठ्ठर उठाते ही ताड़ लिया कि उसमें कोई है। किन्तु बिना कुछ कहे सुने वह उस गठ्ठर को अपने घर ले गया। घर जाकर, गठ्ठर खोलने पर उसको चमकता हुआ बालक दिखाई दिया। सुमित्र की कोई सन्तान न थी। उसकी पत्नी ने बच्चे को देख कर कहा-"मेरा लाल है, क्या हम इस बच्चे को पाल लें ?"

सुमित्र भी मान गया, और उसने प्रमोद को अपने फूस के घर में रख लिया। पुराने कपडों का एक गठ्ठर बाँधा, साथ एक पत्थर लिया, गङ्गा नदी में नाव लेकर निकल पड़ा। कुछ दिनों बाद काशी के पास जा, बीच गङ्गा में, उसने गठ्ठर को पत्थर के साथ छोड़ दिया। यह वक्रबुद्धि के नौकर गुप्त रूप से देख रहे थे, उन्होने जाकर आने राजा से कह दिया कि सब काम पूरा हो गया है।

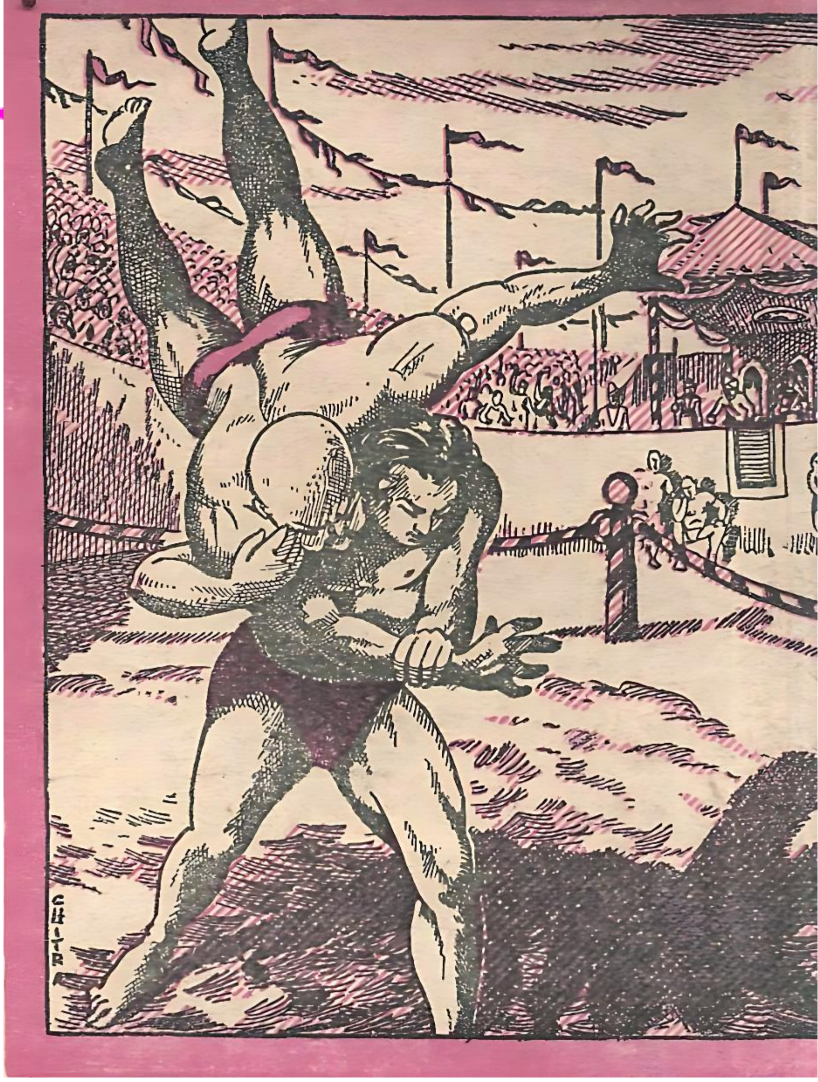
कुछ दिन गुजर गये। वक्रबुद्धि ने अपने वचन के अनुसार सुमित्र को धन न दिया। सुमित्र भी घबराने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि प्रमोद का भेद खुल जाय। इस कारण से वह एक अन्धियारी रात में, अपनी पत्नी और प्रमोद को लेकर रामनगर छोड़ कर चला गया।

वह महीनों जङ्गलों और पहाड़ों में घूमता फिरा, फिर जाते जाते मथुरा पहुँचा। प्रमोद का नाम बदलकर कुमोद कर दिया। सुमित्र, खेतीबाड़ी करके, जैसे तैसे, पत्नी और बच्चे का पोषण करते हुए काल व्यापन करने लगा। होते होते कुमोद खूब हट्टा कट्टा, लम्बा चौड़ा हो गया। भीम की तरह कुमोद भी मल्लयुद्ध और पाक शास्त्र में खूब प्रवीण बन गया।

मथुरा नगर का कोई राजा न था। राजकुमारी का संरक्षक, गजवर्मा नाम का

कोई राज-सम्बन्धी ही राज्य का परिपालन कर रहा था। मृत राजा ने आज्ञा दे रखी थी कि राजकुमारी के सयानी होने पर जो कोई भी उससे विवाह करेगा, वह मथुरा का अधिपति होगा। राजकुमारी गुणवती सयानी तो हो गई थी; पर अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ था। गजवर्मा को खेल तमाशे का बहुत शौक था। एक बार उसने राजमहल में ही दङ्गल करवाने की आयोजना की और देश के बड़े बड़े पहलवानों को निमन्त्रण भेजा। सैकड़ों पहलवान आये। हजारों आदमी दङ्गल देखने के लिये उपस्थित हुये। प्रेक्षकों में कुमोद भी एक था। शाम तक दङ्गल चलता रहा। दङ्गल के विजेता को पुरस्कार देने से पहले गजवर्मा ने कहा-"जो कोई इस पहलवान को जीत लेगा उसी को यह पुरस्कार मिलेगा।"

यह घोषणा सुनते ही प्रेक्षकों में से कुमोद सामने आया। उस पहलवान की और कुमोद की कुश्ती हुयी। लोगों ने समझा कि कुमोद एक मिनट में ही हार जायेगा। मगर वैसा न हुआ। गजवर्मा के बगल में बैठी हुयी राजकुमारी गुणवती की नजर कुमोद पर गड़ी हुयी थी। वह चाह



रही थी कि कुछ भी हो, कुमोद जीते।

बहुत देर तक कुश्ती चलती रही, आखिर कुमोद ने उस पहलवान को चारों खाने चित्त गिरा दिया। गजवर्मा ने कुमोद को पुरस्कार देते हुये कहा-"बेटा! मुझे नहीं मालूम था कि मेरे राज्य में इतना बलवान भी कोई है। तू पहलवानों के साथ क्यों नहीं पहले आया ?"

इस प्रश्न का जवाब देते हुये कुमोद ने कहा-"प्रभू ! मैं पेशे से पहलवान नहीं हूँ। रसोई करना मेरा पेशा है।"



कुमोद को हजारों आखों से गुणवती को देखता जान गजवर्मा को एक बुरी चाल सूझी। उसने सोचा कि अगर राजकुमारी की रसोइये से शादी कर दी जाय, तो वह ही हमेशा राजा होकर रह सकेगा, क्यों कि रसोइया राज्य करने के योग्य न होगा।

लुके छुपे विवाह का भी प्रबन्ध कर दिया गया। रात के समय गजवर्मा ने कुमोद को बुलाकर उसको दूल्हा बनाया, गुणवती ने भी कोई एतराज न किया। पुरोहित ने सवेरा होते होते विवाह की विधि समाप्त कर दी।

कुमोद के रहने का इन्तजाम भी गुणवती के अन्तःपुर में किया गया। जब उसको पत्नी अकेले में दिखाई दी तो उसने यों कहा-"राजकुमारी ! यह सोच शोक न कर कि तूने रसाइये से विवाह किया है। मैं रामनगर का राजकुमार हूँ। हमारे मन्त्री वक्रबुद्धि ने हमारे वंश से विश्वासघात किया है। तुम्हारा संरक्षक गजवर्मा भी तुम्हें घोखा देने की फ़िराक में है। इन दोनों को मैं सजा दूँगा।"

गुणवती को यह बात सुन कुछ भी आश्चर्य न हुआ। उसने मुस्कराते हुये कहा-"संसार में न जाने कितने राजकुमार हैं, पर आप ही मेरे पति हैं। चाहे आप रसोइये हों या राजकुमार, मेरे लिये एक ही बात है।"

कुछ दिनों बाद कुमोद ने गजवर्मा के पास जाकर कहा-"प्रभू ! गङ्गा नदी के किनारे स्थित रामनगर में इस समय बहुत अराजकता है। वहाँ प्रजा कुशासन के कारण बहुत कष्ट झेल रही है। मेरे साथ आप अगर एक छोटी सेना भेजें तो मैं आसानी से उसको जीत कर हमारे राज्य में मिला सकता हूँ।"

यह बात सुन गजवर्मा बहुत आनन्दित हुआ। जल्दी ही कुमोद ने सेना साथ लेकर रामनगर पर हमला किया। पहिले ही बूढ़ा सुमित्र वहाँ पहुँच चुका था, उसने अपने बन्धु-मित्रों को बता दिया था कि राजकुमार अपने राज्य की बागडोर सम्भालने के लिये स्वयं आ रहा है।

यह बात कानों कान सारे शहर में फैल गई। वक्रबुद्धि के अत्याचार से तङ्ग आई हुई प्रजा प्रमोद के प्रत्यागमन की प्रतीक्षा करने लगी। प्रमोद के गङ्गा के परले किनारे पर आते ही, वक्रबुद्धि को उसके नौकरों ने बाँधकर काल कोठरी में डाल दिया। बिना युद्ध या किसी रक्तपात के, प्रमोद ने अपना राज्य फिर से प्राप्त कर लिया।

खुले में, वक्रबुद्धि पर अभियोग लगाया गया, प्रमोद ने उसको फाँसी की सजा दी। फिर उसने राज्य में नये कर्मचारियों को नियुक्त किया, कुशासन को समाप्त किया। वह राज्य फिर से सुखी और सम्पन्न हो गया।

इधर मथुरा में, राजकुमार के आने की प्रतीक्षा राजकुमारी गुणवती और गजवर्मा भी बड़ी आकुलता से कर रहे थे। आखिर, वार्ता मिली कि कुमोद विजयी सेना के साथ वापिस



आ रहा है। गजवर्मा बहुत प्रसन्न हुआ, उसने अपनी प्रसन्नता में दरबार भी लगवाया।

कुमोद का स्वागत करने के लिये शहर में जलूस निकाला गया। सारा शहर सजाया गया। घर वगैरह भी अलंकृत किये गये। घर घर में युवतियाँ राजकुमार की आरती उतारने के लिये तैयार खडी थीं। कुमोद अपने सफेद घोड़े पर चढ़ कर जलूस के साथ नगर घूम कर, दरबार में पहुँचा।

सिंहासन पर गजवर्मा बैठा हुआ था। उसके दोनों तरफ दो आसनों पर गुणवती

और प्रमोद बैठे हुये थे। गजवर्मा ने कुमोद की ओर मुँह कर कहा- "बेटा, तुमने मथुरा की कीर्ति बढ़ाई है। रामनगर की विजय कर तुमने मथुरा की वर्णनातीत सहायता की है। मैं तुझे क्या पुरस्कार दे सकता हूँ?"

"महाप्रभू ! आप गलती कर रहे हैं। मैने रामनगर को मथुरा के लिये नहीं जीता है। रामनगर तो मेरा ही है। उसको मैने फिर शत्रुओं के हाथ से ले लिया है। अगर आपकी मदद मिली तो मैं रामनगर के लिये मथुरा को भी जीत लूँगा।" प्रमोद ने कहा।

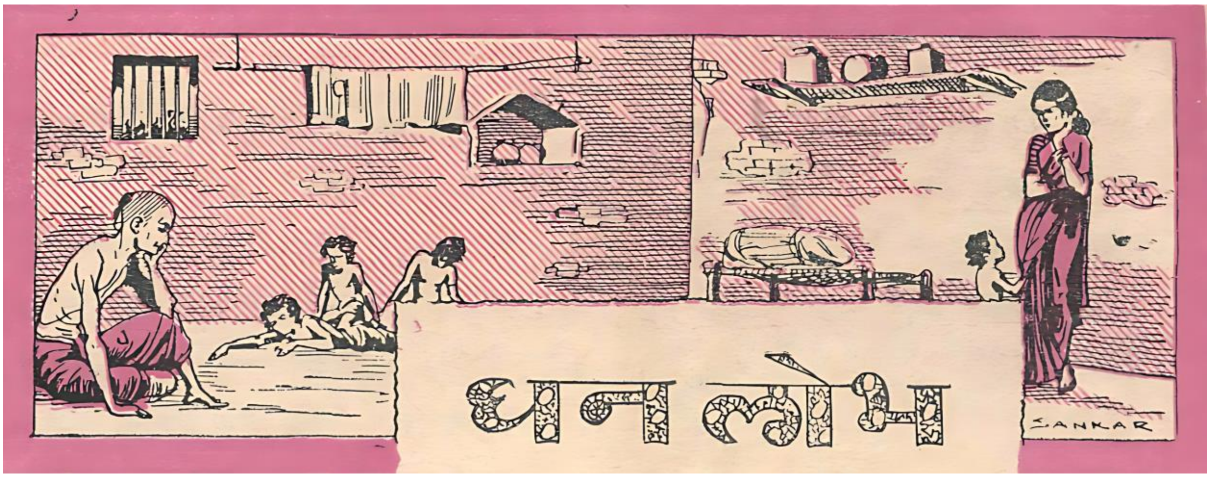
गजवर्मा गुम्से में गरजने लगा। "ओ कृतघ्न ! तुझ जैसे रासोइये को मेरा इतना गौरव देने का प्रतिफल क्या यही है ? क्या तू मेरी ही जड़ खोदना चाहता है ? देख, मैं तेरा क्या करता हूँ ?"

"मैं रसोइया नहीं हूँ । मेरा नाम भी कुमोद नहीं है। मेरा नाम बल्कि प्रमोद है। मैं रामनगर का राजा हूँ। मैं राजकुमारी का पति हूँ। अब आपका स्थान इस सिंहासन पर नहीं है। मेहरबानी करके उठिये।" प्रमोद ने कहा।

यह बात सुनते ही गजवर्मा तलवार लेकर प्रमोद की तरफ लपका। परन्तु बलवान प्रमोद के उसका हाथ मजबूती से पकड़ते ही तलवार झट नीचे गिर पड़ी। उसके हाथ की हड्डियाँ भी पटापट टूट गईं।

प्रमोद के अंगरक्षक गजवर्मा को पकड़ कर जेल में ले गये। प्रमोद ने भरे दरबार में अपनी कहानी सुनाई। प्रजा ने भी उसको अपना राजा स्वीकार किया। प्रमोद और गुणवती बहुत दिन सुख से जीवित रहे और अपने राज्य का परिपालन करते रहे।





द्रोणपुरी नाम के नगर में पहले कभी एक बहुत ही गरीब ब्राह्मण रहा करता था। उसका नाम था सोम शर्मा। घर बार के भार से वह दबा जाता था। उसको चार बच्चे और पत्नी का पोषण करना पड़ता था।

सोमशर्मा हमेशा यही सोचता रहता कि गरीबी से कैसे निकला जाय। किसी राजा के पैर पकड़ने से यह दारिद्य जरूर मिट सकता था। परन्तु राजाश्रय पाने के लिये न वह पण्डित था न कवि ही। फिर उसका लोक ज्ञान भी कुछ ऐसा वैसा ही था। तब राजा का आश्रय कैसे मिल सकता था?

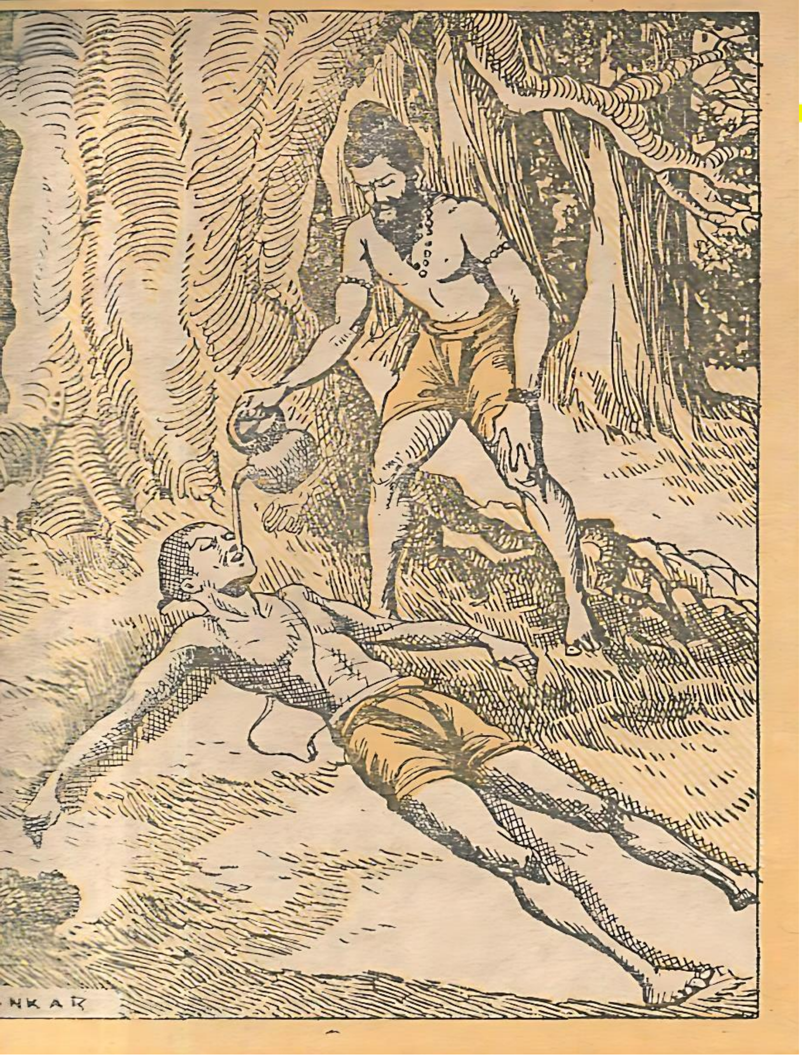
"राजा का आश्रय न मिले तो क्या ? राजा को और मुझे बनानेवाले उस परमेश्वर से ही प्रार्थना करूँगा। उसकी अनुकम्पा पाने के लिये तो पण्डित पामर का भेद नहीं आता। निर्मल मन से यदि उसकी भक्ति की जाय तो क्या मेरे कष्ट दूर नहीं होंगे?" सोमशर्मा ने सोचा।

यह सोचकर उसने अपनी पत्नी से कहा कि वह तपस्या करने वन में जा रहा हैं, कुछ महीनों में वापिस आ जायेगा। कुछ दिनो बाद वह एक घने जङ्गल में पहुँचा। वहाँ एक पेड़ के नीचे पद्मासन लगाकर वह शिव-दर्शन के लिये तपस्या करने लगा।

एक दो दिन बीते। भूख से सोमशर्मा की बुरी हालत हो गई। अब उसका मन शिव पर न लग कर भोजन पर लगा हुआ था। एक सप्ताह बाद वह मूर्छित होकर गिर पड़ा और 'शिव, शिव' के बदले वह 'खाना, पानी' कह कह कर तड़पने लगा।

उस समय उस तरफ से एक मुनि जा रहा था। उसको सोमशर्मा का कराहना सुनाई दिया। उसके पास जाकर, कमण्डल में से

रामदत्त शर्मा



उसके गले में थोड़ा पानी डाला। सोमशर्मा उठकर बैठ गया। तब मुनि ने पूछा-"बेटा ! तुम कौन हो ? इस घने जङ्गल में 'खाना, पानी' के लिये चिल्लाने की तुम पर क्यों नौबत आई ?"

मुनि के इस प्रकार पूछने पर सोमशर्मा हक्का बक्का रह गया। वह सोच रहा था कि वह तो शिव ध्यान ही कर रहा था। "स्वामी ! शायद आपको गलत सुनाई दिया होगा। मैं 'खाना, पानी' नहीं कह रहा था। मैं तो 'शिव शिव' जप रहा था।" सोमशर्मा ने कहा।

सोमशर्मा को देखकर मुनि को बहुत दया आई।

"बेटा, तो तुम वन में तपस्या करने के लिये आये हो। मैं समझता हूँ शायद मुक्ति प्राप्ति के लिये।" मुनि ने कहा। तब सोमशर्मा को सच कहना पड़ा। मुनि उसकी बात सुनकर हँसा।

"बेटा, सिर्फ धन लाभ की अभिलाषा से परमेश्वर का ध्यान करने की कोई जरूरत नहीं है। वह व्यर्थ है। यदि तुझे धन ही चाहिये तो वह इच्छा तो कोई भी सिद्ध पुरुष पूरी कर सकता है। जरा सब्र करो। मैं अभी आया।" यह कह मुनि वहाँ से उठा और पेड़ों में अदृश्य हो गया। कुछ देर बाद आकर :-

"बेटा ! इस कमण्डल को ले जाओ। इसमें मन्त्रशक्ति से पूर्ण जल है। अगर किसी लोहे के टुकड़े पर एक बून्द जल डाल दिया तो वह उसी क्षण सोने का हो जायेगा। घर जाओ। सुख से रहो।" मुनि ने आशीर्वाद दिया।

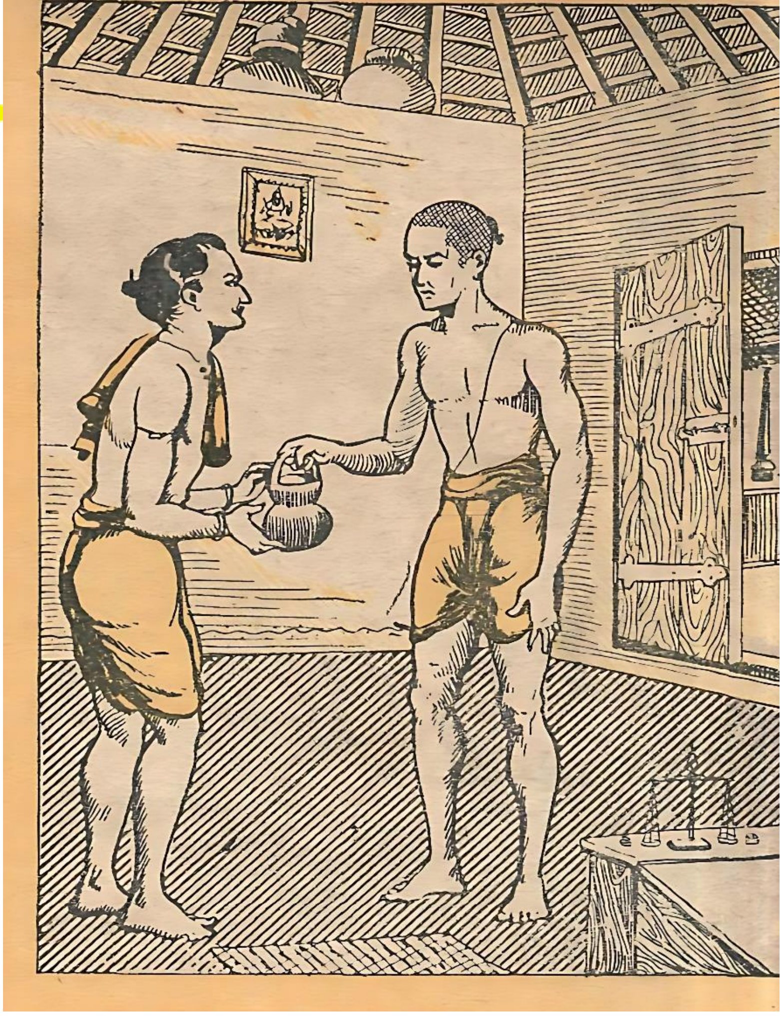
सोमशर्मा मुनि को नमस्कार कर घर के लिये चल पड़ा। दो रोज चलने के बाद वह एक गाँव पहुँचा। वहाँ शिवालय के

बगल वाले एक सुनार के घर के चबूतरे पर बैठ गया।

तब ठीक दुपहर का समय था। सोमशर्मा को जोर से भूख लग रही थी। इतने में सुनार ने सोमशर्मा को देखा।

"महाराज, काम के कारण आपका आना मुझे मालूम न हुआ, माफ कीजिये। आप तालाब में नहा आईये और मैं इस बीच में आपके भोजन का प्रबन्ध कर दूँगा।" सुनार ने कहा।

सोमशर्मा ने कहा-"अच्छा"। अपने कमण्ड़ल को सुनार के हाथ में थामते हुये कहा-"बाबू, इसे जरा सम्भाल कर रखिये। आपके आतिथ्य के लिये मैं कृतज्ञ हूँ।" वह तालाब में स्नान करने के लिये चला गया। सोमशर्मा के चले जाने पर सुनार कमण्डल लेकर घर के अन्दर गया। उसी समय जिस पात्र में वह चाँदी पिघला रहा था, उसमें से चान्दी पिघलकर भट्टी में गिर रही थी। "अरे बाप रे बाप" कहता वह एक छलाँग में ही भट्टी के पास पहुँचा। कूदने के कारण कमण्ड़ल में से पानी की दो चार बून्द उछल कर नीचे रखी हथौड़ी पर पड़ीं।



एक क्षण में ही वह लोहे की हथौड़ी सोने की होकर चमकने लगी। सुनार को यह आश्चर्य पहले तो समझ में न आया। कमण्ड़ल में से दो चार बून्द उसने चिमटी पर छिटकी; वह भी सोने की हो गई।

यह सब देख उस ईमानदार सुनार के मन में लालच की भावना पैदा हुई। उसे पता लग गया कि कमण्डल का पानी साधारण पानी नहीं है, परन्तु उसमें मन्त्र शक्ति है। उसको अपने पास रखकर उसने धनी होना चाहा। तुरन्त उसने सोने की



हथौड़ी, चिमटी और कमण्डल को कपडे में लपेटकर एक सन्दूक में रख दिया। तब घर में आग लगाकर, रोता चिल्लाता वह सन्दूक लेकर बाहर भाग गया।

सुनार के घर के पास ही शम्भुदास का घर था। सुनार रोता चिल्लाता उसके पास पहुँचा। "अरे भाई, मेरा घर जल गया है। जैसे तैसे सिर्फ यह सन्दूक ही बाहर निकाल पाया हूँ। आपका किया हुआ कभी न भूलूँगा, जरा इसको आप अपने घर में रख लीजिए।" वह शम्भुदास को मनाने लगा।

शम्भुदास मान गया, और उस सन्दूक को अपने घर में रख लिया। सुनार का घर जलकर राख हो गया।

इस बीच में सोमशर्मा नहा-धोकर वहाँ आ पहुँचा। सुनार उसके पास जाकर रोने लगा-"हाय ! हाय ! मेरा घर जल गया है। मेरी सारी कि सारी सम्पत्ति राख हो गई है। आपका कमण्डल ही कम से कम मैंने बचाने की कोशिश की। पर लपटों में से मैं उसे निकाल न सका। माफ कीजिये।" वह सोमशर्मा के पैरों पड़ने लगा।

सोमशर्मा के मुख से एक शब्द न निकला। वह यह सोच कर दहा जाता था कि वह मन्त्र शक्ति का लाभ न पा सका। क्या कम से कम कमण्डल भी उस जले घर में न मिलेगा ? यह सोच कर वह वहाँ खोजने लगा।

घर में रखे ताम्बे काँसे के सब पात्र तो दिखाई दिये; पर कहीं कमण्डल न दिखाई दिया। सोमशर्मा को सुनार पर सन्देह होने लगा। उसने सोचा कि मन्त्र शक्ति वाले जल की महिमा जान कर शायद वह उसको धोखा दे रहा है। बातों से कोई फायदा न जान वह सीधे गाँव के

पञ्चायतदार के पास फरियाद लेकर पहुँचा। पञ्चायतदार ने सुनार को बुलवा कर पूछ तलब की। सुनार यह तो मान गया कि सोमशर्मा का उसको कमण्डल देना सच है। परन्तु उसने कहा कि घर के बर्तनों के साथ वह भी जल गया है।

पञ्चायतदार को भी लगा कि यह सब ही हो सकता है। सब बर्तन तो जल कर खाक हो गये है। क्या फिर कमण्डल आग में बच सकेगा ? "भला, अब क्या किया जा सकता है, आराम से घर जाओ।" पञ्चायतदार ने सोमशर्मा से कहा।

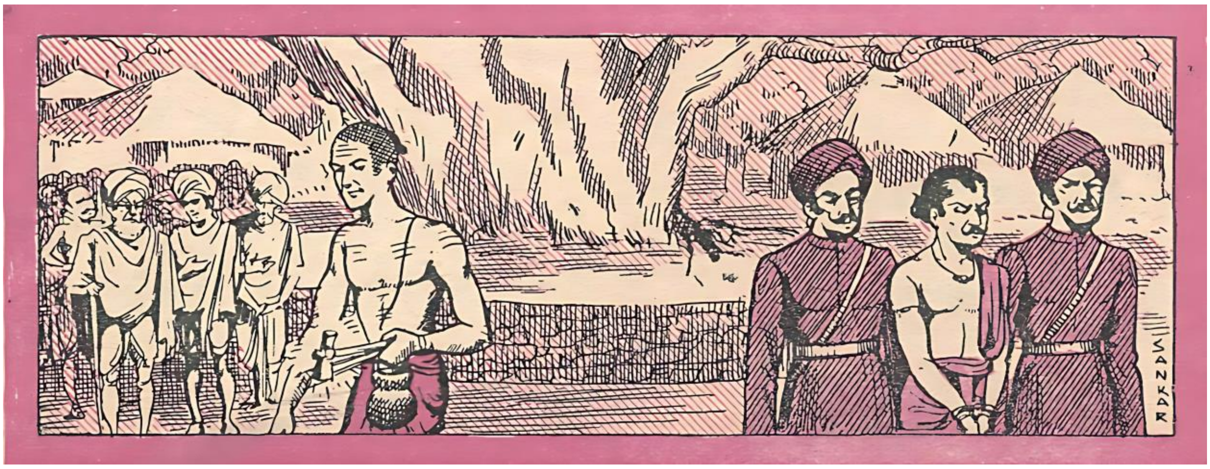
इस सुनवाई को सुनने के लिये आनेवालों में शम्भुदास भी था। उसको सन्देह हुआ। "सुनार यह तो कहता है कि घर में रखा सब सामान जल गया है, पर वह सन्दूक के बारे में क्यों कुछ नहीं कहता है ? जरूर दाल में कुछ काला है।" उसने सोचा।

घर जाकर, उस सन्दूक को लाकर, शम्भूदास ने जो कुछ गुजरा था, पञ्चायतदार से कह दिया। पञ्चायतदार ने जब ताला खोल कर सन्दूक देखा तो उसमें कमण्डल के साथ सोने की हथौड़ी और चिमटी भी रखी थीं। सुनार की चाल सब को पता लग गई।

पञ्चायतदार ने सुनार पर जुरमाना लगाया। और सोने की हथौड़ी, चिमटी और कमण्डल को सोमशर्मा को दिलवा दिया।

सामशर्मा ये सब चीजें लेकर अपने घर वापिस आ गया। मन्त्र-शक्ति वाले जल को छिड़क कर, उसने घर में रखे काँसे और ताम्बे के बर्तनों को सोने का बना दिया।

इस तरह सोमशर्मा का दारिद्य समाप्त हुआ। वह भरसक दान आदि करता हुआ परमात्मा की भक्ति में अपना समय बिताने लगा।





कनिष्क की उदारता

बहुत समय पहले कुषाण वंश के कनिष्क ने पेशावर को राजधानी बना कर उत्तर भारत का परिपालन किया। लोगों में तब यह अफवाह थी कि वह दिव्य गुणों को लेकर पैदा हुआ था।

कनिष्क अपने दया-दाक्षिण्य के अतिरिक्त अपने शौर्य, साहस के लिये भी प्रसिद्ध था। कई बलवान राजाओं को जीत कर उसने अपना सामन्त बना लिया था। उनमें कन्नोज़ का भी राजा था।

कनिष्क की जन्मगाँठ पर सामन्तों में भट भेजने की एक परम्परा चली आती थी। एक बार उसके जन्म-दिवस पर, कन्नोज़ के राजा ने भेंट के रूप में कुछ रेशमी कपड़ा भेजा।

कनिष्क को रेशम के कपड़े का यह उपहार बहुत पसन्द आया। उसने सोचा कि अगर उसका एक अचकन बना लिया जाय तो अच्छा होगा। दर्जी को बुलवाकर आज्ञा दी कि वह एक सप्ताह में अचकन तैयार करके लावे।

एक सप्ताह नहीं, दो सप्ताह गुज़र गये; पर दर्जी अचकन तैयार करके नहीं लाया। कनिष्क ने क्रोध के साथ सैनिकों को आज्ञा दी कि वे दर्जी को, चाहे वह किसी भी अवस्था में हो, पकड़ लायें। सैनिक तुरन्त जाकर उस दर्जी को पकड़ लाये और उसको कनिष्क के सामने पेश किया।

कनिष्क ने गुस्से में पूछा -"क्या कारण है अचकन के बनाने में इतनी देरी हुई है ?" दर्जी ने हाथ जोड़ कर कहा-



"महा प्रभु ! इसमें मेरी गलती कुछ नहीं है। आप ने अचकन बनाने के लिये जो कपड़ा दिया था उस पर दो पैरों के चिन्ह पड़े हुये हैं। चाहे जैसे भी हेर-फेर करके कपड़े को सियें, पैरों के चिन्ह आपकी पीठ पर ही आते हैं। आप स्वयं यह देख सकते हैं।" दर्जी ने रेशमी कपड़ा कनिष्क को दिया।

कनिष्क को बेहद गुस्सा आया। रेशम के कपड़े को गौर से देखने पर मालूम हुआ कि दर्जी का कहना ठीक ही था।

"यह कन्नौज का राजा मेरा ही अपमान करता है। उसकी इतनी हिम्मत ? उसका घमण्ड दूर करना ही होगा।" उसने मन्त्री और सेनापति को बुलवाया। उनसे सलाह मशवरा किया। एक सप्ताह बाद सुसज्जित सेना के साथ कन्नौज राज्य पर आक्रमण करने के लिये वह चल पड़ा।

कन्नौज के राजा को भी मालूम होगया कि कनिष्क दल बल के साथ उसके राज्य पर हमला करने के लिये आ रहा है। शक्तिशाली कनिष्क का वह मुकाबला न कर सकेगा, यह कन्नौज का राजा भली भाँति जानता था। फिर क्या किया जाय ?

राजा ने मन्त्री से सलाह माँगी। तब मन्त्री ने यों कहा:-

"महाराज ! मैंने पहिले ही आपसे प्रार्थना की थी कि आप वह उपहार न भेजें। जान बूझकर आपने जहरीले साँप की दुम पर पैर रखा है। यह तो स्वयं ही आपने आफत मोल ले ली है।"

राजा ने सिर एक तरफ मोड़कर, दबी आवाज में कहा-"खैर, जो हो गया है, सो हो गया है। अगर अब हमने सोच विचार कर कुछ न किया तो हमारे न प्राण रहेंगे न राज्य ही।"



"महाराज। मैं कन्नौज का मन्त्री हूँ। मैंने राजा को आपका अपमान करने से रोका था, उसी का यह फल है।" मन्त्री ने कनिष्क को अपना कटा हाथ दिखाया।

कनिष्क ने मन्त्री का कहा सब कुछ सुना। उसने सोचा कि दण्ड उसको उसी के कारण मिला है।

"अच्छा ! तो मैं इस घमण्डी को ठीक सजा दूँगा।" कनिष्क ने मन्त्री को आश्वासन दिया। परन्तु मन्त्री इतने पर भी चुप न हुआ।

"महाराज ! जब तक मैं उससे बदला 'नहीं ले लूँगा, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। यह जान कर कि आप आक्रमण कर रहे हैं, वह नगर छोड़ कर भाग गया है। वह किस तरफ भागा है, यह मुझे मालूम है। हमें उसको पकड़ना चाहिये।"

कनिष्क ने उसका सुझाव मानकर, मन्त्री से उसको पकड़ने का उपाय पूछा। राजा से तब मन्त्री ने कहा-

"महाराज ! यदि हम उसको पकड़ना चाहते है तो उसके लिये दो ही रास्ते हैं।

तब मन्त्री ने कहा-

"तो फिर आप बिना 'क्यों ?' पूछे मेरे हाथ कटवा दीजिये।"

यह सुन राजा आगा पीछा करने लगा। वह यह बिल्कुल न चाहता था कि राजभक्त मन्त्री का अङ्ग भङ्ग किया जाय। पर लाचारी थी, जल्लाद को बुलवाकर मन्त्री का हाथ कटवा दिया।

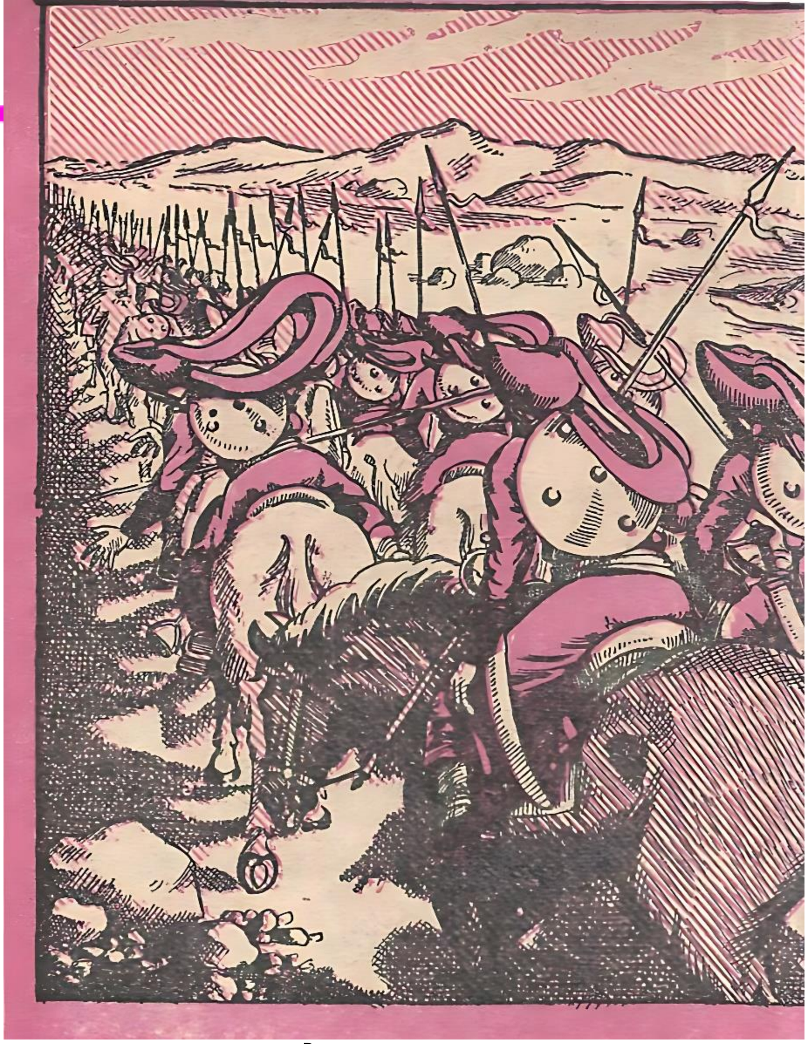
एक सप्ताह बाद, एक अच्छे घोड़े पर चढ़, वह कनिष्क से मिलने निकला। कन्नौज की सीमा के पास वह कनिष्क से मिल सका।

अगर एक रास्ते पर चलें तो चालीस दिन लगेंगे। दूसरे रास्ते से सप्ताह भर में ही वहाँ पहुँच सकते हैं। पर वह रास्ता बहुत भयानक है। रेत में से हमें जाना होगा, कहीं एक बूँद पानी भी नहीं मिलेगा।"

कनिष्क ने कुछ सोच विचार कर दूसरे रास्ते से जाने का निश्चय किया। यद्यपि सफर सप्ताह भर का था, फिर भी उसने दस दिन के लिये काफी पानी और रसद इकट्ठी करवाई। सेना को रेत वाले रास्ते से जाने के लिये हुक्म दिया।

सेना रेत में जा रही थी। कहीं पेड़ पत्ता न था। पानी भी न कहीं दिखाई देता था। तिस पर, दस दिन चलने पर भी गम्य स्थान पास न आया। दो तीन दिन गुजरने के बाद, खाने की बात तो अलग, सैनिक प्यास के मारे छटपटाने लगे। दस दिन की रसद खतम हो गयी।

परिस्थिति को इस प्रकार बिगड़ा पा कनिष्क ने मन्त्री को बुलवाकर पूछा कि यह क्या बात है, यहाँ सात दिन तो क्या दस दिन हो गये हैं। पर अभी गम्य स्थान पास नहीं आया है। तब मन्त्री ने कहा-



"महाराज ! मैने जानबूझ कर आपको धोखा दिया है। आपने तो यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि आप हमारे राजा को यम के पास भेज देंगे, अब नौबत यह आयी है कि आप ही अपनी सेना के साथ यम के पास जा रहे हैं। चाहे आप पीछे लौटना चाहें, या आगे जाना चाहें, उसके लिये कम से कम बारह दिन लगेंगे। इसलिये इस रेगिस्तान में, जहाँ पानी की एक बूद भी न मिलेगी, सबको मरना होगा। अगर आपने अब मेरा सिर भी कटवाना चाहा तो मैं उसके लिये तैयार हूँ। मेरा उद्देश्य पूरा

हो गया है। राज्य का काम मैने कर दिया है। यह बात सुन कनिष्क एक क्षण निश्चेष्ट होगया। परन्तु दूसरे क्षण मुस्कराते हुये कहा-"मन्त्री ! तेरी राजभक्ति बहुत प्रशंसनीय है। परन्तु तू एक बात भूल गया-सा लगता है। मैं दिव्य गुणों को लेकर पैदा हुआ हूँ, यह केवल कोई कहानी नहीं है। तुम ही देख लेना। वह अपने घोडे पर सवार हो परमात्मा की दी हुई कटर को हाथ में ले, अकेला चल पड़ा।

कनिष्क के एक दो मील उस रेगिस्थान में घूमने पर उसको एक सूखी हुई झील दिखाई दी। घोड़े पर से उतर कर, उस झील के बीचों बीच जा उसने कटार को जमीन में भौंका। दूसरे क्षण, जहाँ कटार गडी थी, वहाँ से एक तेज जल धारा आकाश की तरफ निकली। "मन्त्री ! अब तो देखी मेरी शक्ति की महिमा। व्यर्थ अङ्ग विच्छेद करवाने के लिये तुझे दुःखी होना चाहिये।" कनिष्क ने कहा। मन्त्री ने शर्म के मारे सिर नीचा कर लिया।

कनिष्क फिर कन्नौज पर आक्रमण करने के लिये सेना को सन्नद्ध करने लगा। तब मन्त्री ने उसके पास जाकर कहा-"महाराज ! अब मुझे पता लगा कि आप दिव्य गुणों वाले हैं। आपने जो मेरे प्रति उदारता दिखाई है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती। इतने उदार और दिव्य गुणों वाले आप क्या एक छोटे मोटे राजा की गल्ती न माफ कर सकेंगे?"

कनिष्क ने कहा-"ठीक है" और अपनी सेना को राजधानी पेशावर की ओर जाने के लिये कहा। मन्त्री उससे विदा लेकर, कन्नौज राजा के पास गया और उसको यह शुभवार्ता सुनाई।



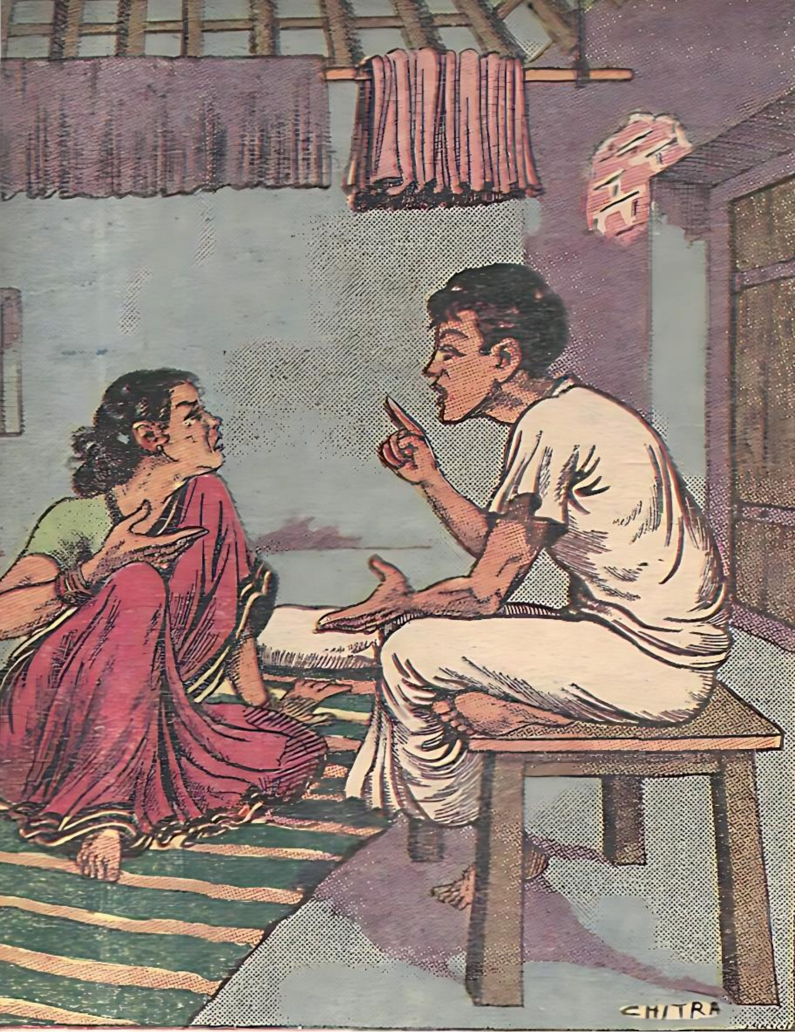


तारानगर में एक बहुत बड़ा चोर रहा करता था। वह चोरी करने में बहुत पहुँचा हुआ था। कितने ही धनियों के घरों में उसने चोरी की थी। पर उसको अभी तक कोई पकड़ नहीं पाया था। लोगो ने उसका नाम "रात का तारा" रख रखा था। पर किसी को वह "रात का तारा" कौन है, कहाँ रहता है, कैसे रहता है, यह न मालूम था। राजा ने उसको पकड़ने का हर प्रयत्न किया; परन्तु वह सफल न हो सका।

रात के तारा का एक लड़का था। वह पिता से भी अधिक चालाक था। उसने लड़के का नाम "दिन का तारा" रखा। जब दिन का तारा १६ वर्ष का हो गया तो दोनों मिलकर चोरी करने जाते। क्योंकि रात के तारे की उम्र होती जाती थी, उसे दिन प्रति दिन दिन के तारे की सहायता की अधिक आवश्यकता होने लगी।

बाप बेटे ने मिलकर एक दिन राजा के खजाने में सेँध लगाई। सेँध के बाहर दिन का तारा खड़ा पहरा देता रहा। सेँध में से रात का तारा खजाने के अन्दर गया और धन, जवाहरात आदि, लड़के को देकर फिर अन्दर घुसा। इस बार रात के तारे के हाथ से कोई चीज़ गिरी और आवाज हुई। आवाज सुनकर सिपाही भागे भागे आये। तभी रात का तारा सेँध में से बाहर जा रहा था; सिर बाहर था और धड़ अन्दर। सिपाहियों ने धड़ काट दिया। सिर बाहर जा पड़ा। सेँध के बाहर लड़का खड़ा ही हुआ था, वह पिता का सिर लेकर भागा। यह दुःख खबरी जाकर उसने अपनी माँ

अर्जुन कुमार



भी कोई चोर है। राजा ने सिपाहियों को हुक्म दिया कि मारे हुये चोर का धड़ एक गाडी में रखकर शहर भर में फिरवायें, उसको देखकर जो कोई रोये उसको पकड़ लायें। यह सुन दिन का तारा अपने घर गया।

"कल पिताजी की लाश हमारी गली लाई जायेगी। अगर तू उसको देखकर रोई तो आफत आ पड़ेगी।" दिन के तारे ने अपनी माँ से कहा।

"बेटा ! तेरे पिता को देखे बगैर कैसे रह सकूँगी ? और देखने पर रोये बिना कैसे रह पाऊँगी ? तुम्ही बताओ ?" माँ ने पूछा।

और कोई चारा नहीं था, दिन के तारे ने एक उपाय सोचा। वह और उसकी माँ, गरीबों के वेश में एक और गली में गये। वहाँ, दिन का तारा एक इमली के पेड़ पर चढकर, इमली तोड़ने का बहाना करने लगा, जब रात के तारा का शव उस गली में लाया गया, तो उसकी पत्नी को बेहद दुःख हुआ। उसी समय दिन का तारा पेड़ पर से कूद पड़ा। उस दुःख में दिन के तारे पर पड़ माँ रोने लगी-"बाप तो पहले ही चले गये। अब बेटा तुम पर क्या

को सुनाई। पति के शोक में वह रोने चिल्लाने लगी। दिन के तारे ने अपनी माँ को समझाया कि वह जोर से न रोये, नहीं तो लोगों को मालूम हो जायेगा।

अगले दिन, दिन का तारा अच्छी पोषाक पहन कर एक बड़े आदमी की तरह दरबार में गया। वहाँ रात की चोरी के बारे में बातचीत हो रही थी। सिर के न होने के कारण चोर कौन था, वे जान नहीं पाये थे। चूँकि कई चीज़ें चोरी चली गई थीं और चोर का सिर भी गायब था, इसलिये अनुमान किया जा रहा था कि दूसरा

आ पड़ा है ?" सिपाहियों ने उसको वहीं छोड़, शव को शहर में घुमाकर वापिस चले गये।

अगले दिन, दिन का तारा यथापूर्व दरबार में गया। राजा ने सिपाहियों को बुलाकर पूछा।

"चोर का शव देखकर क्या कोई रोया था ?"

"नहीं, महाराज ! एक भिखारिन को रोता तो देखा था। परन्तु वह अपने लड़के के पेड़ पर से गिर जाने के कारण रो रही थी।" सिपाहियों ने जवाब दिया।

वह रोनेवाली भिखारिन और पेड़ से गिरनेवाला वह युवक, राजा को सन्देह हुआ; उस चोर के सम्बन्धी ही हो सकते हैं। परन्तु अब वे हाथ से निकल गये थे। इसलिये राजा ने सिपाहियों को एक और आज्ञा दी। आज रात ही चोर के शव को जला देना। मगर खबरदार ! जो नौजवान पेड़ पर से गिर पड़ा था वह जरूर अपने पिता का सिर चिता पर सिर रखने आयेगा। जब वह आये तो उसे तभी पकड़ लेना।"

राजा की आज्ञा के अनुसार सिपाही उस रात को शव को श्मशान में ले जा





कर, चिता बनाकर उसे जलाने लगे। उसी समय दिन का तारा मुँह पर कालिख पोत कर, बाल बिखेर कर, लाल कपड़े पहन, एक हाथ में छुरी और दूसरे हाथ में मशाल लेकर, पिता के सिर के गट्ठर को कन्धे पर डाल, जोर जोर से चिल्लाता हुआ, पैरों में घूँघरू बाँध कर भागता हुआ श्मशान में आया। उस भयङ्कर व्यक्ति को भूत समझ कर सिपाही इधर उधर ड़र के मारे भाग खड़े हुये। तब 'दिन के तारे' ने चिता की परिक्रमा की। उस पर पिता का सिर फेंक वह अपने रास्ते पर चला गया।

उस रात की घटना का वृत्तान्त सुन, चोर के लड़के के साहस पर राजा को आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने अपने सिपाहियों को इस प्रकार आज्ञा दी- "चोर के लड़के ने फिर तुम्हें चकमा दे दिया है। कल वह चिता में दूध डालने के लिये जरूर आयेगा। इसलिये, कम से कम इस बार धोखा न खाना। उसको जरूर पकड़ लेना।"

अगले दिन श्मशान में पहरा देनेवाले सिपाहियों ने एक ग्वाले को देखा। वह सिर पर दूध के घड़े रख कर श्मशान में से शहर की ओर चला आ रहा था। उसे डरा धमका कर सिपाहियों ने दूध लेना चाहा। परन्तु उसने एक बूँद भी न दी। सिपाहियों ने उसे डराया। उनसे बचकर वह ग्वाला चिता की तरफ जाने लगा। उसी समय उसके सिर पर रखे घड़े चिता में गिर कर टूट गये।

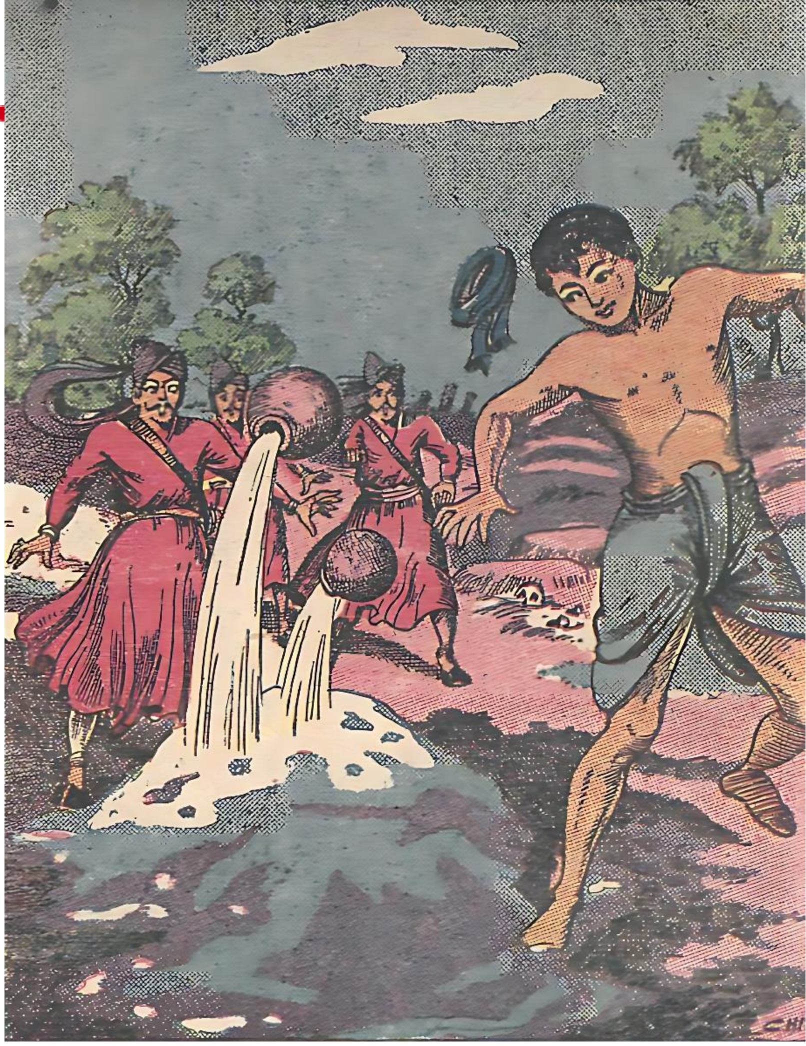
"देखो, मैं तुम्हारी शिकायत राजा से कर दूँगा।" कहता कहता ग्वाला आगे जाने लगा। उससे पहिले सिपाहियों ने राजा के पास जाकर निवेदन किया कि-"उन्होंने कुछ नहीं किया है, उन पर झूठी शिकायत करने के लिये एक ग्वाला चला आ रहा है।"

जब राजा ने जो कुछ गुजरा था सुना तो उसको मालूम हो गया कि सिपाहियों को चोर का लड़का फिर धोखा दे गया है। यह जान कर कि इतने चालाक व्यक्ति को पकड़ना सिपाहियों के बस की बात नहीं है, राजा ने सरदार को बुला कर कहा- "आज रात को चोर का लड़का अपने पिता की अस्थियाँ लेने जरूर श्मशान में आयेगा। श्मशान में ही रह कर अगर उसको तू जैसे तैसे पकड़ पाया तो तुझे ईनाम दूँगा।"

सरदार ने चोर के लड़के को पकड़ने के लिये अच्छी चाल चली। जहाँ चोर को दहन किया गया था वहाँ उसने एक तम्बू गाड़ा, उसमें एक खटिया रख स्वयं बैठ गया, और बाहर सिपाहियों को तैनात कर दिया। अगर कोई अस्थियाँ लेने आयेगा तो उसको सिपाहियों को पार कर तम्बू में आना पड़ेगा।

यह सब पता लगा कर दिन का तारा लड़की के वेष में, श्मशान गया। सरदार के तम्बू के बाहर पहरा देने वाले सिपाहियों ने उसको देख कर पूछा-"तुम कौन हो?"

"मुझे सरदार ने बुलाया है।" दिन के तारे ने औरतों की आवाज में कहा। शायद सच ही हो; यह समझ



सिपाहियों ने उसको तम्बू के अन्दर जाने दिया।

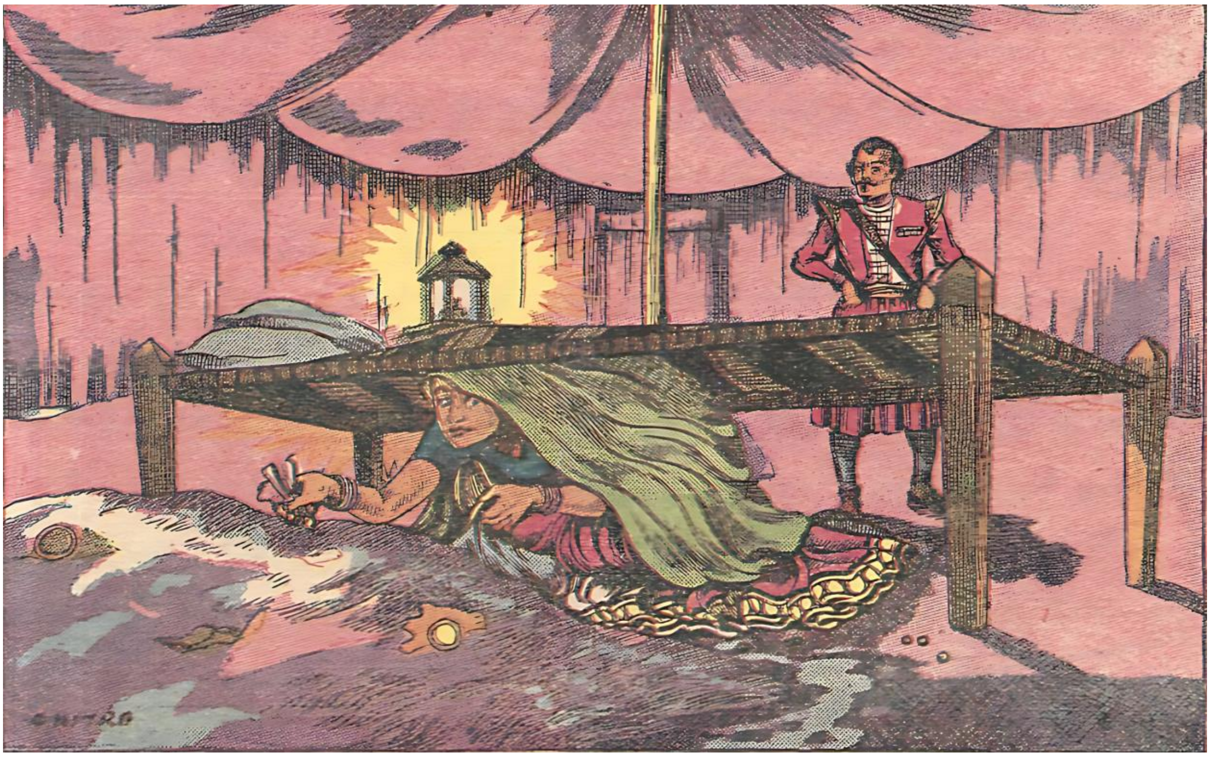
दिन के तारे ने खटिया पर सोये हुये सरदार को जगाया। सरदार तिलमिलाता हुआ उठा, पूछा-"अरी, तू कौन है ?" और उसका गला पकड़ लिया।

"बाप रे बाप ! आपने मेरे गले का हार ही तोड़ दिया है। मोती नीचे गिर कर बिखर गये हैं।" दिन के तारे ने खटिया के नीचे मोती चुगने का अभिनय करते हुये कहा। "पहले बाहर जा।" सरदार गरजा।

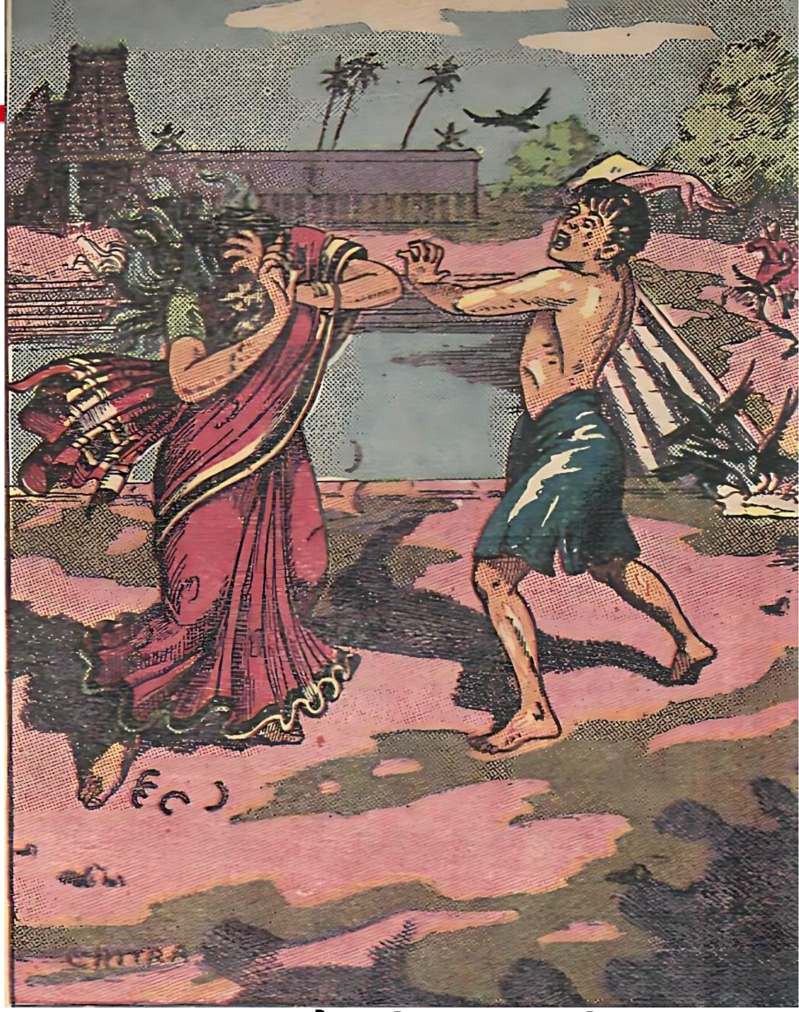
जरा इन मोतियों को चुग लेने दीजिये। मैं चली जाऊँगी।" दिन के तारे ने पिता की अस्थियाँ चुनीं और बाहर चला गया। राजा ने समझ लिया कि चोर के लड़के ने सरदार के आँखों में भी धूल झोंक दी है। तब उन्होंने लाचार अपने मन्त्री को बुलवाया। "मन्त्री ! यह काम तुम ही कर सकते हो। चोर का लड़का अपने पिता की अस्थियों को मिलाने के लिये किसी न किसी तालाब में जरूर जायेगा। सब तालाबों के पास पहरा लगवा कर उसको जैसे भी हो पकड़ो।"

यह बात सुन दिन के तारे को एक तरतीब सूझी। अपने पिता की अस्थियों को चूर कर पानी में मिला कर उसने अपने शरीर पर पोत लिया।

"माँ ! तू भिखारिन का वेष बना मन्दिर के तालाब के पास खाना बनाती रह। मैं वहाँ आकर पागल की तरह तालाब में कूद पड़ूँगा। सिपाहियों के मुझे बाहर निकालने से पहले पिताजी की अस्थियाँ पानी में मिल जायेंगी। तू भोजन को पत्तल पर परोस कर मुझे बुलाना। इस बीच में कौव्वे चावल खा लेंगे। मैं तुम पर गुस्सा दिखा तेरी चूड़ियाँ



तोड़ दूँगा। कपड़े फाड़ दूँगा। तब तालाब में जाकर नहा आना। तब मैं ही तुम्हें बाहर निकाल दूँगा। इस प्रकार हम अस्थि मिलाने की विधि पूरी कर देंगे।" दिन के तारे ने अपनी माँ से खूब समझा-समझा कर कहा। उसकी माँ को अपने लड़के की अक्लमन्दी पर अचरज हो रहा था।



उसकी तरतीब काम कर गईं। मन्दिर के तालाब के पास गुजरी हुई घटना को सुन मन्त्री को सन्देह हुआ। जब राजा से उन्होंने यह बात कही तब राजा ने कहा-"इसमें सन्देह की क्या बात है ? हो न हो, वे चोर का लड़का और उसकी पत्नी हैं। खैर ! कोई बात नहीं। जिसने पिता के लिये इतना किया है वह ब्राह्मणों को भोज भी अवश्य देगा। इसलिये ब्राह्मणों के घर पहरा बिठाओ। यह सम्भव है घर का पता लगने पर हम उसको आसानी से पकड़ सकेंगे। सावधानी से काम करो। लापरवाही हुई तो वह फिर हाथ से निकल जायगा। पता लगाओ कि उसका घर कहाँ है ?"

उसी दिन तारा नगर की सराय में दूर देश से आये हुये कुछ ब्राह्मण ठहरे हुये थे। आधी रात के समय दिन का तारा न्यौता देकर, उनको गलत-गलत गलियों में से, गलत रास्ते से, घुमा-फिरा कर अपने घर ले गया। शास्त्रोक्त विधि के अनुसार उसने दान-धर्म आदि, कार्य किये और सवेरे होते-होते उन्हे फिर घुमा-फिरा कर, सराय में पहुँचा आया। उसका काम तो पूरा हो गया; मगर ब्राह्मणों को यह ठीक न पता लग सका कि उसका घर कहाँ था।

यह जान कर कि सराय में ठहरे हुये ब्राह्मण पिछली रात को कहीं पर भोज के लिये गये थे, सिपाहियों ने उनसे पूछ तलब कर सब कुछ मालूम कर लिया। चूँकि

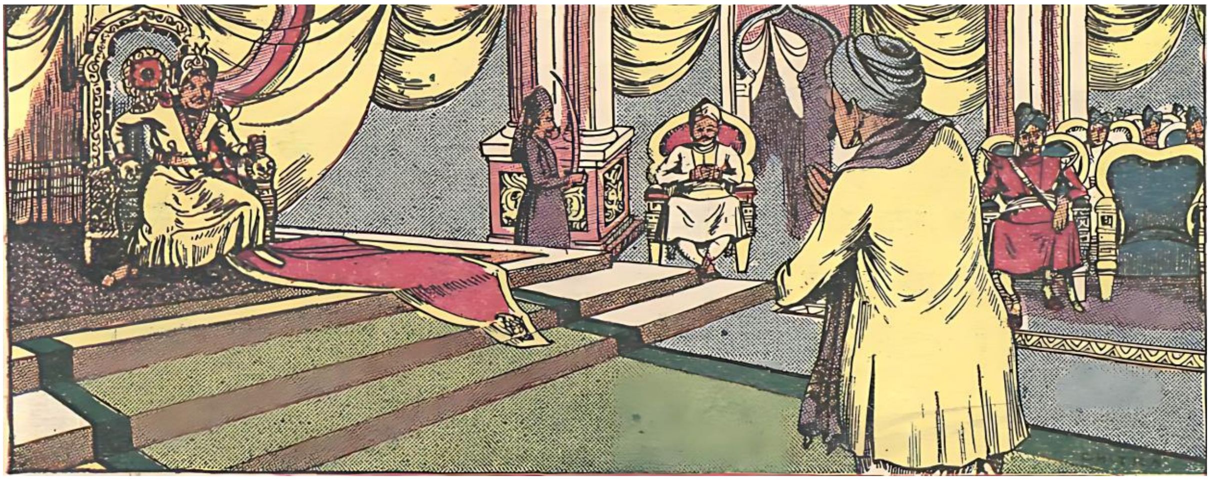
एक नई जगह, रात में घूम-फिर कर वे गये थे, वे चोर का मकान सिपाहियों को न दिखा पाये। बहुत घूमें, पर वे सिपाहियों की मदद न कर पाये। इतने मक्कार चोर को पकड़ना किसी के बस की बात नहीं है, यह राजा ताड़ गया। इसलिये उसने दरबार में घोषणा की-"सिपाही, सरदार, मन्त्री की आँखों में धूल झोंक कर जिस युवक ने अपने पिता का अन्त्येष्टि संस्कार किया है, अगर वह अपने आप ही हमें अपना पता बता दें, उसको न केवल क्षमा किया जायेगा; अपितु अपनी पुत्री का विवाह भी मैं उससे कर दूँगा। उससे अधिक अक्लमन्द वर मिलना मुश्किल है।"

अच्छी पोशाक पहने दिन का तारा दरबार में ही बैठा था। उसने खड़े होकर कहा-"महाराज ! मैं ही वह चोर हूँ।" राजा ने भरे दरबार में दिन के तारे की चतुरता की प्रशंसा की। दिन के तारे ने भी अपने कारनामों को हँसते-हँसते सुनाया। लोगों को सुन आश्चर्य हुआ।

परन्तु दरबारियों को यह समझ में न आया कि राजा अपनी लड़की का विवाह एक पेशेवर चोर से क्यों करना चाहते हैं। उनमें से एक ने साहस कर राजा से सविनय पूछा भी।

राजा ने कहा-"एक आदमी चोरी करता है तो शायद इसीलिये कि उसके पास और कोई चारा नहीं होता। अगर उसकी जरूरतें पूरी हों जायें तो वह चोरी न करेगा। जान-बूझ कर तो कोई भी चोरी नहीं करना चाहता है।"

राजा ने अपने कथनानुसार अपनी लड़की का दिन के तारे के साथ विवाह कर दिया। दिन का तारा चोरी छोड़ पत्नी के साथ सुख-पूर्वक रहने लगा।



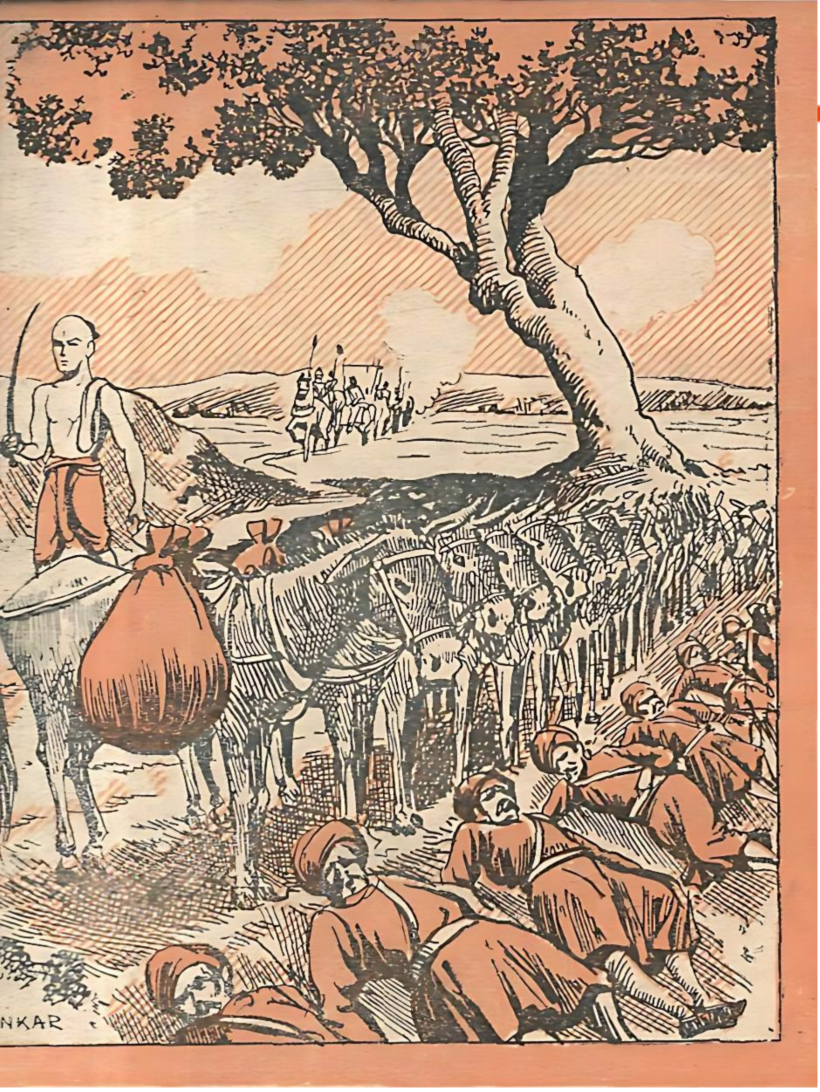


एक गाँव में विष्णुशर्मा नाम का ब्राह्मण रहा करता था। वह बहुत ही गरीब था। बहुत कोशिश करने पर भी वह गुजारा नहीं कर पाता था। उसने आखिर किसी और जगह जाकर अपना भाग्य आजमाने का निश्चय किया। इसलिये उसने अपनी पत्नी से सफर के लिये खाना, चबैना तैयार करने के लिये कहा।

विष्णुशर्मा की पत्नी, गले में जो सोना था उसे बेचकर खाने पीने की सामग्री खरीदने के लिये शाम को पंसारी की दुकान पर गई। अन्धेरा हो चुका था। अन्धेरे में पन्सारी ने उसको मैदे के बदले संखिया दे दी। पत्नी ने उसी रात, संखिया को मिलाकर ठीक चौबीस मीठी पूरी बनाकर उनकी एक पोटली बाँध दी। अगले दिन सवेरे विष्णुशर्मा पोटली लेकर गाँव से चला गया।

दुपहर होते होते विष्णुशर्मा बहुत दूर चला गया था। वह थका माँदा एक तालाब के पास पहुँचा। पूरियों की पोटली तालाब के किनारे रख वह तालाब में स्नान करने गया। उसी समय तालाब के पास चौबीस चोर आये। वे पिछली रात को राज महल में चोरी कर, चोरी के माल को गधों पर लादकर वहाँ भागकर पहुँचे थे। वे भूख के मारे तङ्ग थे। इस कारण उन्होंने विष्णुशर्मा की पोटली खोली, २४ पूरियों को उन्होंने एक एक करके आपस में बाट कर खालिया। खाकर चौबीस के चौबीस वही ढ़ेर हो गये।

विष्णुशर्मा नहाकर आया, सन्ध्या की और जब पूरी खाने आया, तो वहाँ पूरियाँ तो नहीं थीं, परन्तु उनकी जगह मरे हुये चोर और धनराशी से लदे गधे दिखाई



दिये। उस अपार सम्पत्ति को देख कर वह अपनी भूख भी भूल गया। पर वह यह न सोच सका कि उतने सारे धन को कैसे घर बटोर कर ले जाया जाय।

इस बीच विष्णुशर्मा को दूरी पर राजा के सिपाही, घोडे पर सवार होकर आते हुये दिखाई दिये। तुरन्त उसने चोरों की तलवारें इकट्टी की और एक तलवार से सब चोरों के सिर धड़ से अलग कर दिये। उसके बाद, गधों पर लदी सम्पत्ति को एक जगह रख, तलवार कन्धे पर रख, उसकी रखवाली करता हुआ, चारों ओर वह घूमने लगा।

जल्दी ही वहाँ सिपाही आ पहुँचे। मरे हुये चोरों को, और राजा के चोरी गये माल को देखकर वे चकित हुये। उन्होंने विष्णुशर्मा से कहा-"महाराज ! हम भूरिश्वर राजा के सिपाही हैं। यह सब माल कल राजमहल से चोर उठा लाये थे। इन सब को किसने मारा है ? आप यहाँ क्यों पहरा दे रहे हैं ?"

"वह सब मैं आप लोगों के राजा के सामने ही कह दूँगा। पहिले इस माल को सम्भाल लो। चलो, चलें।" विष्णुशर्मा ने कहा।

चोरी गये हुये माल को फिर पाकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसने विष्णुशर्मा से कहा-"चौबीस चोरों को मार कर तुमने बहुत बहादुरी का काम किया है। तुम्हारे साहस के कारण हमको हमारी सम्पत्ति वापिस मिल गई है। कहो, मैं तुम्हारा कैसे प्रत्युपकार करूँ ?"

तब विष्णुशर्मा ने कहा-"राजन् ! आपके पास छः लाख सैनिक हैं। उनकी क्या जरूरत है? वे फालतू हैं ? उनमें से दो लाख को हटाकर उनका वेतन मुझे दिलवाइये। मैं आपके आश्रय में ही रहूँगा।"

राजा ने अपने कहने के अनुसार विष्णुशर्मा को अपने आश्रय में ले लिया, दो लाख सैनिकों को हटाकर उनका वेतन विष्णुशर्मा को दे दिया। परन्तु यह प्रबन्ध मन्त्री को बिल्कुल पसन्द न था। चूँकि कुछ और चारा न था, मन्त्री ने चुप रहना ही अच्छा समझा।

कुछ समय व्यतीत हो गया। आस पास के जङ्गलों में भयङ्कर शेर रहा करते थे, उनमें से एक को आदमी के खून का चस्का पड़ गया था; वह गाँवों में घूम घूम कर लोगों को मारने लगा। राजा ने उसको मारने के लिये सिपाहियों को भेजना चाहा। पर मन्त्री ने, जो विष्णुशर्मा से खौफ खाये हुये था, सलाह दी-"जब दो लाख सिपाहियों की जगह अकेला विष्णुशर्मा ही है तो औरों को भेजने से क्या फायदा ? उसको ही भेजिये।"

"हाँ, हाँ, मैं ही उस शेर को मार दूँगा। अनुमति दीजिये, राजन्।" विष्णुशर्मा ने राजा से कहा।

उसी दिन शाम को, चोरों की चौबीस तलवार लेकर, शहर के बाहर जाकर, शेर के रास्ते में पड़नेवाले एक पेड़ पर चढ़ कर





वह बैठ गया। अन्धेरा होने के थोड़ी देर बाद ही, शेर बिजली की तरह गरजता हुआ उस रास्ते से निकला। उसको पेड़ पर बैठा विष्णुशर्मा दिखाई दिया। वह और जोर से गरजने लगा। पेड़ की नीचे आ मुख खोल कर विष्णुशर्मा पर ताकने लगा। विष्णुशर्मा ने निशाना लगाकर एक तलवार शेर के मुख में फेंकी। उसके बाद उसने चौबीस के चौबीस तलवारें उस शेर पर फेंकीं। जल्दी ही शेर के प्राण पखेरू उड़ गये। यह गौर से देखकर कि शेर मर गया है, विष्णुशर्मा पेड़ से उतरा। शेर के शरीर पर लगे तलवारों को निकाला। उसने शेर का शरीर चारों तरफ भोंका, और उसके खून को अपने शरीर पर पोत कर; तलवार लेकर रात भर उसके चारों ओर उसने पहरा दिया। अगले दिन सिपाहियों ने विष्णुशर्मा का और शेर का शहर में जोर शोर से जलूस निकला।

राजा ने विष्णुशर्मा को गले लगाकर कहा-"तुम्हारी बहादुरी की सचमुच कोई बराबरी नहीं कर सकता। बताओ, मैं तुम्हारा कैसे उपकार कर सकता हूँ?"

"राजन् ! मन्त्री जी ने कहा था कि मैं दो लाख सैनिकों के समान हूँ। यह सच नहीं है। मैं अब चार लाख सैनिकों के बराबर हूँ। और दो लाख सैनिकों को नौकरी से हटाकर उनकी तनख्वाह मुझे दिलवाइये।" विष्णुशर्मा ने मन्त्री की ओर देखते हुए कहा।

राजा ने वैसे ही किया। मन्त्री को विष्णुशर्मा पर और गुस्सा आया। पर वह कुछ कर नहीं पाता था। भूरीश्वर से बर्खास्त किये जाने पर वे सैनिक एक और राजा के पास चले गये। उन्होने अपने नये राजा से कहा -"महाराज ! भूरिश्वर इस

समय बलहीन हैं। उनके पास केवल दो लाख सेना है। इसलिये आप उन पर हमला कर उनका राज्य छीन लीजिये। इससे अच्छा मौका कभी न मिलेगा।।" उनकी सलाह के अनुसार राजा अपनी सम्पूर्ण सेना को लेकर, मैदान में जा उतरा और भूरीश्वर को युद्ध के लिये आह्वानित किया।

राजा ने मन्त्री की सलाह माँगी।

"महाराज ! मैं इस विषम परिस्थिति में सलाह देने के लिये समर्थ नहीं हूँ। विष्णु शर्मा का विश्वास कर आपने चार लाख सेना हटा दी। इसलिये उसी की सलाह माँगिये।" मन्त्री ने कहा।

राजा ने विष्णुशर्मा की सलाह माँगी। विष्णुशर्मा ने राजा को आश्वासन दिया-"आप शत्रु सेना के बारे में भूल जाईये, मैं आज रात को ही उसका काम तमाम कर दूँगा।"

उसी रात, विष्णुशर्मा अकेला अपनी चौबीस तलवारों को, और शेर की खाल लेकर, मैदान में गया, वहाँ शत्रु सेना डेरा गाडे हुई थी। सिपाही गाढ़ निद्रा में थे। एक तरफ हाथी बँधे हुये थे।



विष्णुशर्मा ने उन हाथियों के बीच शेर की खाल फेंकी। यह सोचकर कि शेर ही उनके बीच कूद पड़ा है, हाथी चीखते, चिल्लाते जञ्जीरें तोड़कर भाग गये।

"मारो, भोंको, काटो, पीटो।" चिल्लाता हुआ विष्णुशर्मा अन्धेरे में चारों ओर भागने लगा।

विष्णुशर्मा का चिल्लाना और हाथियों का चिंघाड़ना सुन, सिपाहियों को लगा कि शत्रु सेना ने उन पर हमला कर दिया है, वे अन्धेरे में एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। आपस में घोर युद्ध होने लगा, और वे धड़ाधड़ मरने लगे।

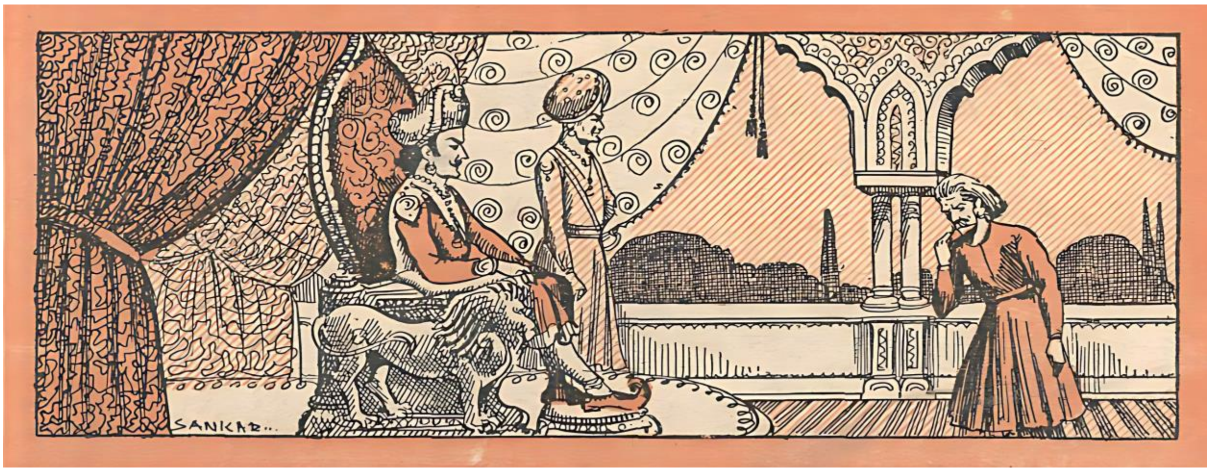
उस शोर शरावे में, विष्णुशर्मा शत्रू राजा के तम्बु में गया। वहाँ राजा का कोई अङ्गरक्षक न था। अच्छा मौका पा, विष्णु- शर्मा ने अकेले में सोते हुये राजा को अपनी तलवार से मार दिया।

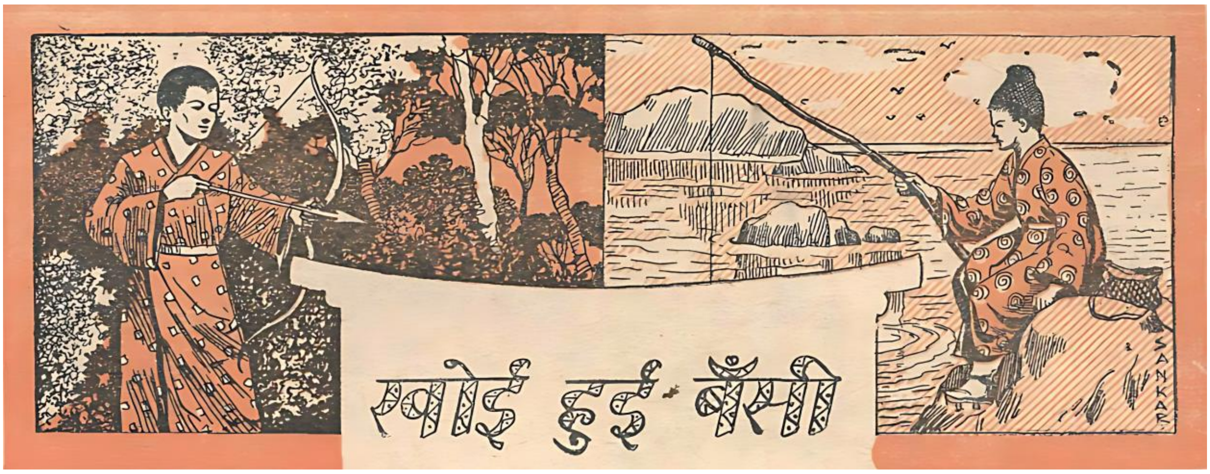
सवेरे होते होते युद्ध का मैदान श्मशान हो गया था। जो सिपाही मरने से बच गये थे, वे वहाँ से भाग गये। विष्णुशर्मा के अकेले ही इतने बड़े युद्ध को जीतने पर, राजा के आनन्द की सीमा न रही।

"तू सचमुच चार लाख सिपाहियों बराबर है। मैं तेरा क्या उपकार कर सकता हूँ ?" राजा ने विष्णुशर्मा से पूछा। तब विष्णुशर्मा ने सविनय कहा-"राजन् ! वह मन्त्री भी किस काम का जो आपत्समय में सलाह न दे सके ? आप अपने मन्त्री को हटाकर, उनकी जगह मुझे रखकर, उनका वेतन मुझे दीजिये।"

राजा ने झट मन्त्री को नौकरी से हटा दिया, और उसकी जगह विष्णुशर्मा को नियुक्त कर दिया।

बुद्धि बल से बढ़कर कोई बल नहीं है।





जापान में कभी हूरी और हुदेरी नाम के दो भाई रहा करते थे।

हूरी रोज समुद्र में मछली पकड़ा करता था और हुदेरी धनुष बाण लेकर जङ्गल में जन्तुओं का शिकार किया करता। दोनों भाईयों के स्वभाव में बहुत अन्तर था। हूरी हमेशा गम्भीर रहा करता था और हुदेरी हँस-मुख था। परन्तु दोनों एक दूसरे को बहुत प्यार करते थे। एक दिन सवेरे हुदेरी ने अपने बड़े भाई हूरी से यों कहा-

तू रोज मछलियाँ पकड़ता हूँ। मैं शिकार करने जाता हूँ। आज आओ; एक काम करें। तू आज मेरा धनुष-बाण लेकर जङ्गल जा और मैं तेरी बँसी लेकर मछली पकड़ने जाऊँगा। कहो, ठीक है न ?"

हूरी को यह पसन्द न आया। परन्तु भाई के बहुत मनाने पर वह उसकी बात मान गया। उस दिन हूरी शिकार करने गया और हुदेरी मछली पकड़ने। साँझ को बिना किसी जन्तु को मारे ही हूरी खाली हाथ घर वापिस आ गया। मछली पकड़ना तो अलग, हुदेरी ने बँसी भी समुद्र में खो दी।

"मैंने तुझे पहले ही मना किया था। मेरी बात तूने नहीं सुनी। मेरी बँसी भी समुद्र के हवाले कर दी।" हूरी ने डाँटा। हुदेरी को मानना पड़ा कि उसने गलती की है।

"वह बँसी गई तो जाने दो। मैं तुझे सैकड़ों बँसियाँ बनवाकर दे दूँगा।" उसने कहा।

"तेरी सैकडों बँसियाँ मुझे नहीं चाहिये। जिस बँसी पर मुझे अभ्यास था। वह न मिली तो मुझे ऐसा लगेगा जैसे मेरे हाथ को लकवा



मार गया हो। मुझे मेरी ही बँसी चाहिये।" हूरी ने गुस्से में कहा।

क्योंकि गलती उसी की थी; इसलिये समुद्र में बँसी खोज लाने के लिये वह चल पड़ा। उसने कसम खा ली, चाहे जान भी जाय; वह समुद्र में से बँसी निकाले बिना वापिस घर नहीं आयेगा।

समुद्र में एक चट्टान के पास वह बँसी गिरी थी। हुदेरी उस चट्टान पर से समुद्र में कूद पड़ा। बहुत नीचे चला गया; पर तह तक न पहुँच पाया। कुछ दूर जाने पर, उसको पानी की तह में कोई चमकती हुई चीज़ दिखाई दी। वह एक महल था। उसके चारों ओर, बड़े बड़े पेड़ोंवाला एक बगीचा था। जब इन पेड़ों के मध्य में खड़ा हो हुदेरी सोच ही रहा था कि क्या किया जाय कि इस बीच में महल में से एक बहुत ही सुन्दर लड़की उसकी तरफ आने लगी।

हुदेरी को देखकर उसने आश्चर्य के साथ पूछा-"आप कौन हैं ?" हुदेरी ने अपनी कहानी एक सिरे से अन्त तक सुना दी।

"ओहो। ऐसी बात है? यह हमारा घर है। मेरे साथ आइये। आपकी खोई हुयी बँसी को मेरे पिताजी दिलवा देंगे।" उसने कहा। हुदेरी उसके साथ महल में हिचकता हुआ घुसा।

वह महल मोती, मूँगे, आदि से बना हुआ था। बहुत ही सुन्दर था। वह समुद्र के राजा का महल था।

समुद्र राज ने हुदेरी का स्वागत किया और उसके भोजन आदि का प्रबन्ध किया। भोजन के बाद राजा ने भिन्न भिन्न रङ्ग की मछलियों को बुलाकर हुकुम दिया कि वे राज्य में रहने वाली सब मछलियों को बुला लायें।

जल्दी ही सब जलचर वहाँ इकट्ठे हो गये। पर किसी को भी हुदेरी की खोई हुई बँसी के बारे में नहीं मालूम था।

इतने में राजा के मन्त्री ने कहा-"प्रभू ! सब तो आ गये हैं, पर तिमि माई नहीं आई हैं। वे गले में दर्द के कारण बीमार पड़ी हुई हैं। खबर मिली है कि वे वैद्य की प्रतीक्षा कर रही हैं।"

तुरत राजवैद्य तिमि माई के पास भेजा गया। वह हाथ में एक बँसी लेकर वापिस आया। थोड़ी देर बाद वह बँसी तिमि के मुख से चीर फाड़ कर शल्य क्रिया द्वारा निकाली गयी।

"यही बँसी है जो मैंने खो दी थी।" हुदेरी ने उसको देख कर कहा। वह जिस काम पर आया था, वह पूरा हो गया था।

परन्तु समुद्र राज की पुत्री को हुदेरी का चला जाना बिल्कुल पसन्द न था।

"आप यहीं रह जाइये। हम दोनों विवाह कर यहीं सुख से रहेंगे।" उसने हुदेरी से कहा।

हुदेरी भी राज कन्या से विवाह करना चाहता था। परन्तु अपने भाई और शिकार को छोड़कर वह रह न सकता था।



"तू ही मेरे साथ क्यों नहीं चली आती?" हुदेरी ने पूछा।

"यदि मैं समुद्र से बाहर गई तो मेरा रूप बदल जायेगा।" राजकन्या ने कहा।

हुदेरी समुद्र से घर वापिस आ गया। हुरी यह देखकर उतना खुश नहीं हुआ कि उसकी बँसी मिल गई है जितना कि भाई को सही सलामत लौटा देखकर। भाई पर गुस्सा करने का कारण भी उसको बहुत रञ्ज हुआ।

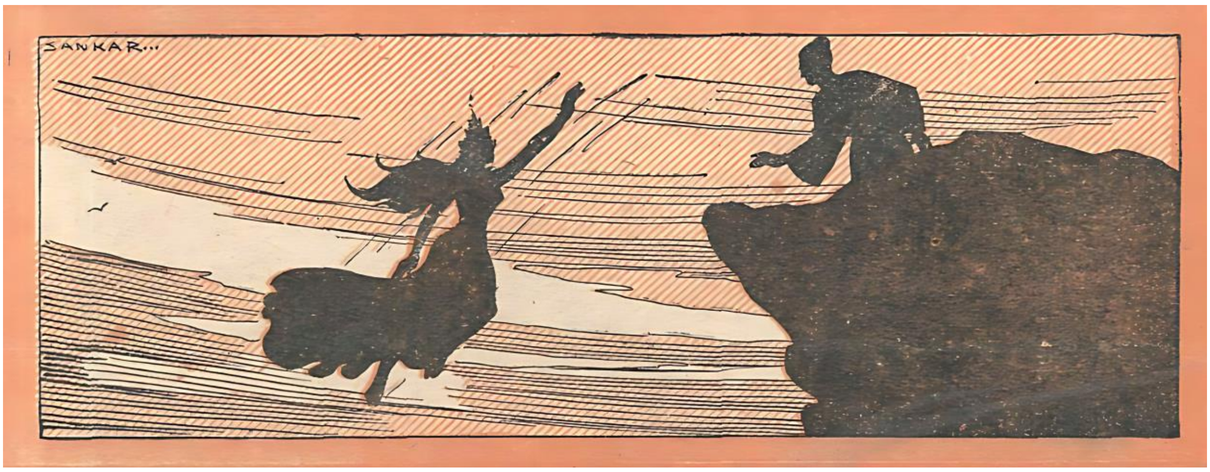
हुदेरी का शिकार का शौक जाता रहा। वह हमेशा समुद्र राज की कन्या के बारे में ही सपने देखने लगा। वह रोज समुद्र के किनारे जाता। समुद्र में उठतीं लहरों को देखकर वह आहें भरता।

एक बार जब हुदेरी समुद्र के किनारे टहल रहा था समुद्र में बड़ी बड़ी लहरें आने लगीं। हवा तेज हुई। तूफान आने लगा। उस तूफान में समुद्र राज की कन्या पानी के ऊपर आ गई। हुदेरी चकित हो देखता खड़ा रह गया। कुछ देर बाद वह हुदेरी के पास आई।

हुदेरी के आनन्द की सीमा न थी। वह उसको अपने भाई के पास ले गया। हूरी बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसने उन दोनों की शादी करवा दी। तीन रोज तीनों बड़े मजे में घूमे फिरे।

तीसरे दिन वे टहलने के लिये समुद्र के किनारे गये। सूर्यास्त के समय हुदेरी की पत्नी में विचित्र परिवर्तन आने लगा। देखते देखते वह पाँच रङ्गोवाली मछली बन गई और एक ही छलाँग में समुद्र में कूद कर अदृश्य हो गई।

उसके बाद हुदेरी रोज समुद्र के किनारे जाया करता। परन्तु वह फिर कभी समुद्र राज कन्या को न देख पाया।



पुजारी का धोखा



बहुत समय पहले कोशाम्बी नगर में एक रईस रहा करता था। उसके दो लड़के थे। दोनों ही बड़े आलसी थे। उनको आलसी देख पिता को बहुत दुःख हुआ करता। वह यह सोच कर कि अगर उनके हाथ पैसा लग गया तो वे और बिगड़ जायेंगे, उनको वह रुपया पैसा न दिया करता था।

थोड़े दिनों बाद वह रईस बीमार पड़ा। उसको मालूम हो गया कि वह जीवित न रहेगा। उसका उस नगर में एक ही विश्वासपात्र था; वह था शिवालय का पुजारी। उस पुजारी को उसने बुलवा कर एक चाबी दी।

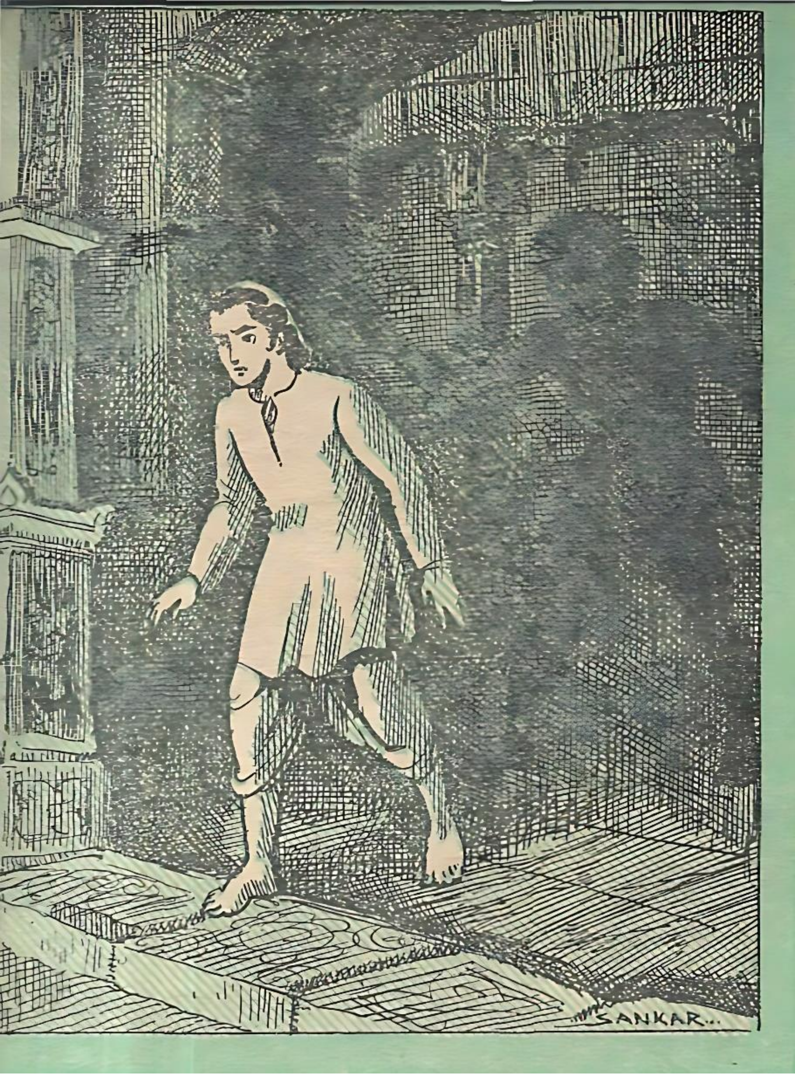
"इस चाबी को अपने पास सावधानी से रखना। मेरी मृत्यु के बाद यदि मेरा कोई लड़का माँगने आये तो इस चाबी को उसको दे देना।" उसने कहा।

पुजारी के चले जाने के बाद उसने अपने पत्नी को बुला कर एक पत्र देकर कहा-"जब हमारे लड़के आलस्य छोड़ कर काम-काजी हो जाये, तब उनको यह पत्र दे देना; तब तक इसको हिफाजत से रखो।" थोड़े दिनों बाद वह मर गया।

पिता के गुज़र जाने के बाद दोनों लड़के आवारा गिर्दी करने लगे। माँ को तङ्ग कर सारा धन उन्होंने खर्च कर डाला। घर के बर्तन भी बेचने पड़े। लड़कों की करतूतों को देख माँ को बड़ा दुःख होता।

आखिर ऐसे दिन भी आये, जब उनको खाने को भी नहीं मिलता था। कोई उन्हें उधार भी नहीं देता था। छोटे लड़के ने माँ के पास जाकर कहा-"माँ! अब मुझे अक्ल आ गई है। अब मैं कहीं मेहनत करके जिऊँगा।" उसकी यह बात सुन माता बहुत

अर्जुन कुमार



प्रसन्न हुई। पति के दिये हुये पत्र को माँ ने उसको दिखाया।

छोटे लड़के ने जब पत्र खोला तो उसमें यह लिखा हुआ था-"'मेरा सारा धन हमारे घर के पूर्व में, बढ़ के पेड़ के नीचेवाले मन्दिर के खण्डहर में एक सन्दूक में दबा हुआ है। सन्दूक की चाबी पुजारी के पास है। उसको लेकर सुख से जिओ।"

उस पत्र को पढ़ते ही छोटा लड़का यह सोच सन्तुष्ट हुआ कि बिना मेहनत के ही उसको धन मिल रहा है। खुद सारे धन को हड़पने का लालच उसमें पैदा हुआ। पुजारी के पास जा चाबी ले ली। अन्धेरा हो जाने के बाद चाबी लेकर मन्दिर में गया। दरवाजा खोल कर अन्दर गया ही था कि उसको ऐसा लगा जैसे उसके पीठ पर किसी ने मुक्का मारा हो; मानों कोई भूत उसका पीछा कर रहा हो। वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ। निराश हो, उसने चाबी पुजारी को वापिस कर दी।

दूसरे दिन उसने माँ की दी हुयी चिट्ठी बड़े भाई को दिखाई, जैसे उसको कुछ मालूम ही न हो। पत्र को पढ़कर भाई ने कहा-"अरे भैय्या ! मैं मन्दिर के पास रखवाली करता हूँ, और तू शहर जाकर एक अच्छा चाकू ले आ। पैसा ले जाते वक्त हमें सावधान रहना चाहिये न ? फिर भी चाकू रखना अच्छा ही है।" छोटे भाई को उसने चाकू खरीदने के लिये भेज दिया।

बड़े भाई ने पुजारी के पास जाकर चाबी ले ली। अन्धेरा होने के बाद, वह भी मन्दिर में घुसा, उसे भी लगा जैसे किसी ने उसकी पीठ पर मुक्का मारा हो। वह भी भूत के ड़र के मारे बाहर भाग गया।

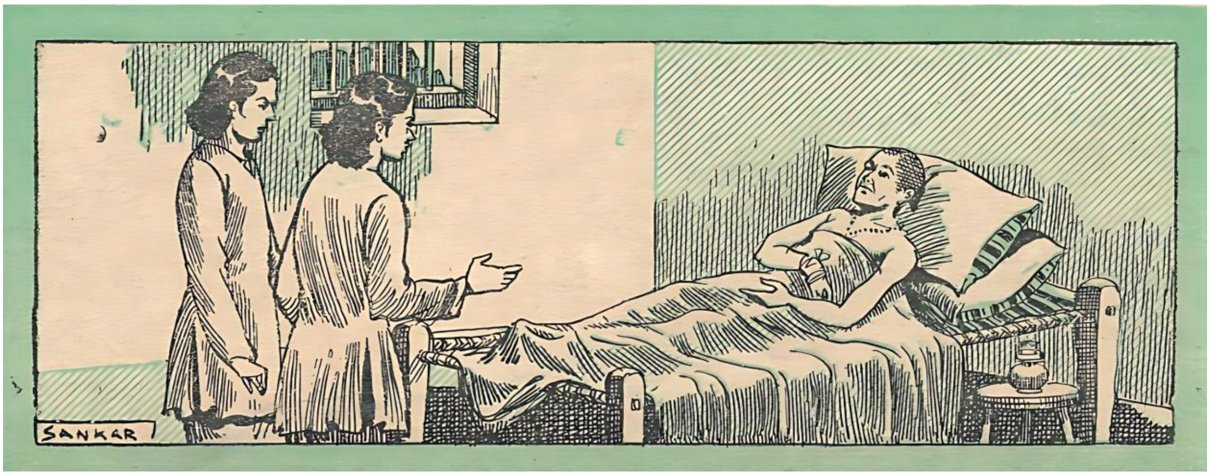
कुछ देर बाद चाकू लेकर छोटा भाई वहाँ पहुँचा।

एक से दो हो जाने पर उनका कुछ हौसला बढ़ा। "अब तो पास चाकू भी है, फिर डरने की क्या जरूरत ?" उन दोनों ने सोचा। परन्तु उनके मन में यह बात घर कर गई थी कि मन्दिर में भूत है। दोनों मिल कर मन्दिर में घुसे। इस बार भी उनकी पीठों पर मुक्के पड़े। छोटे भाई ने, डरते डरते, अन्धेरे में चाकू फेंका।

तुरत उसको 'अरे ऐ' किसी का कराहना सुनाई दिया, और ऐसा लगा जैसे वहाँ से कोई भाग गया हो।

वे यह जानकर बड़े खुश हुये कि भूत भाग गया है। खोदने पर उन्हे वहाँ एक सन्दूक दिखाई दिया। वे सन्दूक में धन देखने की आशा कर रहे थे, परन्तु उस में उन्हे सिर्फ एक पत्र मिला। घर जाकर देखा तो वह वसीयतनामा था, कोशाम्बी के पास सौ एकड़ जमीन दोनों भाईयों को मिली थी। उस पत्र को ले जाकर, उन्होंने पिता के विश्वासपात्र पुजारी को दिखाया। पुजारी के हाथ में पट्टी बँधी हुयी थी। उनके पूछने पर वह क्या है, पुजारी ने कहा-"धोखे का फल मिल रहा है।" फिर उसने बताया कि जब जब वे मन्दिर में घुसे थे उसी ने उनकी पीठ पर घूँसा मारा था। उस पत्र को देख कर उसने कहा-"मैंने भी तुम्हारी तरह सोचा था कि उस सन्दूक में रुपया पैसा होगा। मैंने कभी कल्पना भी न की थी कि उसमें केवल यह पत्र रखा हुआ होगा। तुम्हारा पिता बहुत ही अक्लमन्द था।"

तब उन दोनों को पिता का उद्देश्य समझ में आया। तब से वे उस भूमि में खेती कर आराम से जीने लगे।





एक गाँव में कोई सन्यासी रहा करते थे। गाँव के बाहर उनका झोपड़ा था। उनके भक्त नित उनको फल, पकवान, वगैरह भेंट दिया करते थे। इन्हीं पर वे गुजारा कर लेते थे। अगर किसी दिन किसी ने आकर कुछ न दिया तो वे भूखे ही रह जाते। भोजन हो या न हो वे हमेशा प्रसन्न रहते। एक दिन यह जानकर कि सन्यासी को कई बार भोजन के अभाव में उपवास करना पड़ता है, उनके एक भक्त ने झोपड़े के पास उनके लिये एक अच्छी तगड़ी भैंस बाँध दी। स्वामी उसका दूध पीने लगे।

एक चोर ने सन्यासी के झोपड़े में से भैंस चुरानी चाही। यह कोई बहुत कठिन काम न था। झोपड़ा गाँव के बाहर था। उसकी रखवाली करने के लिये भी वहाँ कोई न था। दरवाजों पर चटखनी भी न थी। स्वामी के झोपड़े के अन्दर सो जाने पर, भैंस को आसानी से खोलकर ले जाया जा सकता था। इसलिये एक दिन वह चोर सन्यासी की झोपड़ी की ओर भैंस चुराने के लिये गया।

रास्ते में चोर को एक और व्यक्ति दिखाई दिया। वह भी उसके साथ चलने लगा।

"तू कौन है? मेरे साथ क्यों आ रहा है? मैं किसी काम पर जा रहा हूँ। जा तू अपना रास्ता नाप, मेरे साथ न आ।" चोर ने कहा।

"मैं भूत हूँ। गाँव के बाहर जो सन्यासी रहता है उसको मारने जा रहा हूँ। जब से सन्यासी यहाँ आया है, इस गाँव के लोग सुख

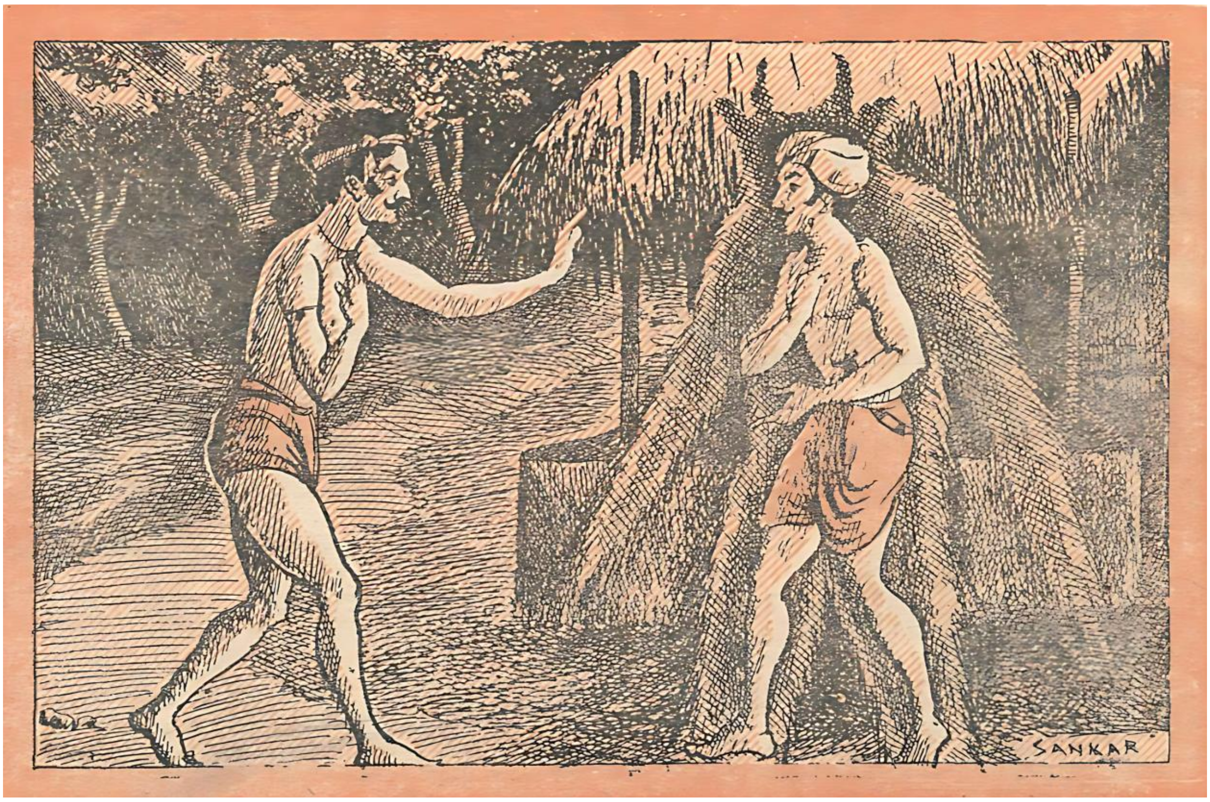
नरोत्तम

से रह रहे हैं। कोई किसी का कुछ नहीं बिगाड़ता। इसलिये मेरा काम नहीं बनता। इस कारण गाँव में कोई बदमाशी, चोरी दङ्गे फसाद आदि नहीं होते। अब मैं इस सन्यासी का काम तमाम कर अपना उल्लू सीधा करना चाहता हूँ। तुम कितनी दूर जा रहे हो ?"

"चोरी करना मेरा पेशा है। मैं भी उसी सन्यासी के झोपड़ी की ओर जा रहा हूँ। मगर मेरा उद्देश्य सन्यासी को मारना नहीं है। उस स्वामी को किसी भक्त ने एक भैंस दी है। मैं उसे चोरी करने जा रहा हूँ।" चोर ने कहा।

चूँ कि दोनों ही सन्यासी को हानि पहुँचाना चाहते थे, उन दोनों में अच्छी दोस्ती पट गई। दोनों हाथ मिलाये मिलाये सन्यासी के झोंपड़े में आधी रात के करीब पहुँचे। चारों ओर सन्नाटा था। सन्यासी झोपड़ी में सो रहा था।

चोर तब अपने मन में यों सोचने लगा-"अगर यह भूत पहले सन्यासी को मारने गया तो सन्यासी चिल्लायेगा, चीखेगा; और पाँच दस आदमी जमा हो जायेंगे।



इस हालत में मुझे भैंस चोरी करने का मौका नहीं मिलेगा। इस कारण मैं पहले ही अपना काम पूरा कर देता हूँ।"

उसी समय भूत इस प्रकार सोच रहा था-"'यदि इस चोर ने पहले भैंस को चुराने की कोशिश की तो, हो सकता है भैंस आहट करे। सन्यासी जाग उठेगा, पुकारेगा। लोग इकट्ठे हो जायेंगे। तब मैं सन्यासी की हत्या न कर पाऊँगा।"

जिस पर भूत ने चोर से कहा-"भाई, मैं पहले सन्यासी का खातमा कर देता हूँ। उसके बाद तू आराम से भैंस खोल ले जाना। तुझे कोई रोक न सकेगा।"

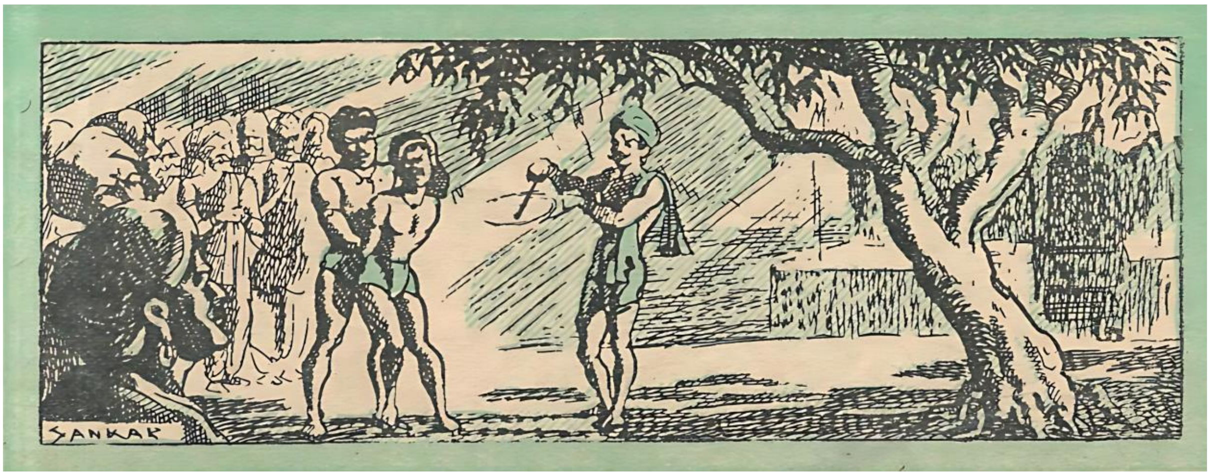
यह सुन चोर ने कहा-"नहीं वैसा नहीं, पहले मुझे चुपचाप भैंस को खोल कर ले जाने दो। तब सन्यासी को जैसे चाहो वैसे मार देना। मेरा काम तो छोटा मोटा ही है।"

दोनों बहस करने लगे। बहस धीमे धीमे झगड़े में बढ़ी। पहले तो धीमे धीमे बात कर रहे थे, मगर बढते बढ़ते, वे जोर जोर से चिल्लाने लगे। थोड़ी देर में वे खूब शोर शरावा करने लगे।

आखिर चोर जोर से चिल्लाया-"ओ सन्यासी ! देख, यह भूत तुझे मारने आया है।" भूत उससे भी अधिक जोर से और गुस्से में बोला-"देख स्वामी ! यह चोर तेरी भैंस चुराने आया है।"

उस शोर के कारण, सन्यासी के अतिरिक्त आस पास के घरों के लोग, लाठी, डण्डे लेकर दौड़े दौड़े वहाँ आये। उन लोगों में से कुछ ने चोर को पकड़ लिया और एक ओझा ने भूत की भी वहीं खूब मरम्मत कर दी।

बुरे लोगों की दोस्ती ज्यादा दिन नहीं रहती।





सोन नदी के किनारे, जङ्गल के पास तीन भाई एक झोंपड़ी में रहा करते थे। वे बहुत ही गरीब थे। उनकी जीविका का एक मात्र आधार आम का पेड़ था। उस आम के पेड़ पर तीन शाखायें थीं। आम के पेड़ पर वसन्त में मौर आता और ग्रीष्म में खूब फल लगते। वे फलों को बेच कर अपना जीवन निर्वाह करते।

एक साल आम के पेड़ पर खूब फल लगे। फलों की रखवाली करने के लिये रोज़ रात को तीनों भाई बारी-बारी से पहरा देते। एक बार जब बड़ा भाई खिली चाँदनी में पहरा दे रहा था, एक बूढ़ा लङ्गड़ाता हुआ पेड़ के पास आया।

"भाई ! मैं भूख से मरा जा रहा हूँ। खाने को कुछ दो। भगवान तुम्हारा भला करें।" बूढ़ा गिड़गिड़ाया।

रखवाली करने वाले बड़े भाई को कुछ न सूझा। "बाबा ! मैं भी तुझ जैसा ही गरीब हूँ। चूँकि तू भूखा है इस टहनी पर जो फल लगे हुये हैं, उन्हें भर पेट खा। वह टहनी मेरी है।" बड़े भाई ने कहा।

बूढ़े ने अपने डण्डे से बड़े भाई की टहनी पर से कुछ आम झाड़ कर खाये। "बाबू ! तुम्हारा भला हो, तुमने मेरी जान बचाई है।" यह कह बूढ़ा चला गया।

अगले दिन रात को जब मझला भाई पहरा दे रहा था वही बूढ़ा फिर वहाँ आया। उसने कहा कि भूख लग रही है। मझले भाई ने भी अपनी टहनी से फल तोड़ कर बूढ़े को दे दिये।

तीसरे दिन वह बूढ़ा उसी तरह आया और छोटे भाई से भी उसकी टहनी से फल माँग कर, खाकर चला गया।

सच्चिदानन्द



चौथे दिन, जब तीनों भाई झोंपड़ी में बैठे हुये थे, बूढ़ा उनके पास पहुँचा।

"बच्चों ! तुम तीनों दयालु हो। तुम्हारा ऋण रखना मुझे अच्छा नहीं लगता। मेरे साथ आओ। मैं आप लोगों का प्रत्युपकार करना चाहता हूँ।" बूढ़े ने कहा।

तीनों भाई खुश हो कर बूढ़े के साथ चल दिए। जब वे नदी किनारे पहुँचे तो बूढ़े ने बड़े भाई की ओर मुड़कर पूछा-"बेटा! तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"यदि इस नदी का पानी दूध हो जाय और वह मेरी सम्पत्ति हो जाय तो भला मुझे और क्या चाहिये?" बड़े भाई ने कहा।

"अच्छा ! तो वैसा ही हो।" बूढ़े ने कहा।

दूसरे क्षण नदी का जल दूध बन गया। उस दूध के लिये दूर-दूर से लोग आने लगे। बड़ा भाई वहीं रह गया।

तब बचे हुये दोनों भाईयों को लेकर बूढ़ा जङ्गल की ओर गया। जङ्गल के बीचों बीच आकर बूढ़े ने दूसरे भाई से पूछा-"बेटा ! तुम्हारी इच्छा क्या है?"

"जिस जगह जङ्गल है, मैं चाहता हूँ कि वहाँ उपजाऊँ जमीन हो जाय, मुझे और कुछ नहीं चाहिये।" उसने कहा।

"तुम्हारी इच्छा पूरी हो।" बूढ़े ने कहा।

झट जङ्गल गायब हो गया और जहाँ तक नज़र जाती थी, वहाँ तक लहलहाते खेत दिखाई देने लगे। दूसरा भाई वहीं रह गया।

तीसरे भाई को साथ लेकर जङ्गल पार कर बूढ़ा कुछ दूर गया। बूढ़े ने उससे

पूछा-"तुम्हारी क्या इच्छा है ?" "मुझे एक अच्छी गुणोंवाली पत्नी चाहिये।" तीसरे भाई ने कहा।

"तो फिर मेरे साथ आ।" कहते हुये बूढ़े ने रास्ता निकाला। चलते-चलते वे एक राजा के अन्तःपुर में पहुँचे। सोने के झूले पर राजा रानी और राजकुमारी झूल रहे थे।

"राजा ! तुम अपनी पुत्री की इस लड़के से शादी करो।" बूढ़े ने कहा।

तब राजा ने कहा-"पहिले ही मेरी लड़की से विवाह करने के लिये दो राजकुमार होड़ कर रहे हैं। मैं यह निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ कि उनमें से किसको अपनी लड़की दूँ ? उस हालत में, उन दोनों को मना कर मैं अपनी लड़की को कैसे इस दरिद्र लड़के को दे सकता हूँ ?"

"राजा ! तुम गलती कर रहे हो। तुम्हारी लड़की के लिये उनसे अधिक योग्य वर यही लड़का है। चाहो तों मैं साबित कर सकता हूँ। उन दोनों राजकुमारों के नाम पर और इस लड़के के नाम पर भी आज ही तीन आम के बीज बोओ। कल तक जिसका बीज वृक्ष बन कर फल दे, उसी को अपनी पुत्री को



देकर व्याह करो।" बूढ़े ने कहा। राजा को विश्वास नहीं हुआ कि एक ही दिन में कैसे आम का पेड़ तैयार हो जायगा और फल देने लग जायगा। फिर भी उसने बूढ़े के कहने के अनुसार किया। अगले दिन जो तीसरे भाई का नाम लेकर बीज बोया गया था, वह पेड़ हो गया और उस पर फल लगे हुये थे।

अपने वचन के अनुसार राजा ने अपनी लड़की की शादी तीसरे भाई से कर दी। बूढ़ा भी अपना ऋण चुका कर अपने रास्ते पर चला गया।



हज़ारों आदमी उसके नीचे काम करते थे।

एक दिन बढ़े भाई के पास एक बूढ़ा आया। बड़ा भाई नदी के पास स्वयं खड़ा हो पीपों में दूध भरवा रहा था।

"महाराज। गला सूखा जा रहा है। भूख से मर रहा हूँ। थोड़ा-सा दूध दिलवा दीजिये।" बूढ़ा झुक-झुक कर मिन्नतें करने लगा। बड़े भाई ने बूढ़े की तरफ घूर कर देखा। बूढ़े को बिना पहिचाने वह उसको डाँटने लगा। अगर इस तरह सब को दूध बाँटना शुरू कर दिया तो व्यापार चल चुका। जा, अपना रास्ता नाप।"

उसी क्षण नदी का दूध पानी हो गया। वहाँ जो मकान वगैरह थे, वे भी गायब हो गये।

अगले दिन दूसरा भाई खेत में धान पिसवा रहा था। वहाँ पड़ा अनाज का ढेर छोटा पहाड़-सा लगता था।

बूढ़े ने दूसरे भाई के पास जाकर कहा-"महाराज ! मैं बूढ़ा हूँ। मुझे भी दो-चार दाने दिलवा दीजिये; पेट भर लूँगा।"

दूसरे भाई ने बूढ़े को नहीं पहचाना "जा, आया है भीख माँगने ? कहीं जाकर काम क्यों नहीं करता ? क्या यह अनाज

राजा ने यद्यपि अपने वचन के अनुसार एक गरीब के साथ अपनी लड़की की शादी कर दी थी, पर उसको सन्देह सताता रहा। इसी कारण, तीन दिन गुज़रने के बाद उसने अपनी लड़की और दामाद को महल से बाहर निकाल दिया। वे दोनों पैदल अपने गाँव गये, और वहाँ एक पुरानी टूटी-फूटी झोपड़ी में रहने लगे।

एक वर्ष बीत गया ।

नदी के किनारे बड़े भाई ने बड़े-बड़े मकान बनवा लिये। दूध दूर-दूर पीपों में रख कर भेजा जाने लगा।

मुफ्त मिला है ? जा, जा यहाँ से।" दूसरे भाई ने झिड़का।

तुरन्त वे सब खेत नदारद हो गये। वह अनाज का ढेर भी गायब हो गया। चारों ओर घना जङ्गल दीखता था।

तीसरे दिन बूढ़ा तीसरे भाई के झोपड़ी के पास गया। "महाराज ! अतिथि हूँ। मुट्ठी भर खाना दीजिये।" बूढ़े ने माँगा।

न तो तीसरे भाई ने, न उसकी पत्नी ने ही बूढ़े को पहचाना।

"अन्दर आओ बाबा ! हम भला तुझे क्या खिला पायेंगे ? दो-एक जौ की रोटी हैं; तू भी खा लेना।" उन्होंने कहा।

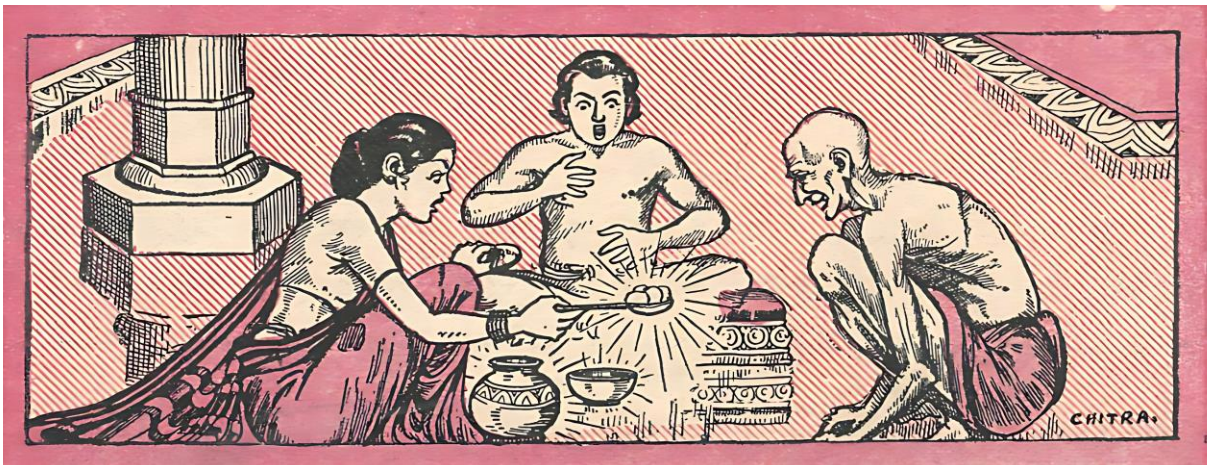
तीनों भोजन करने बैठे। तीसरे भाई की पत्नी ने दाल की हँडिया को लेकर बीच में रखा। ढ़कना खोला। वह देखती क्या है कि उस हँडिया में गरम-गरम पकवान रखे हुये थे।

चमचा बाहर निकाल कर देखा तो वह लकड़ी का न रह कर चाँदी की बन गया था। हँडिया भी सोने की हो गई थी। उनके आश्चर्य की सीमा न रही।

इस आश्चर्य में वे यह न जान सके कि बूढ़ा कहाँ चला गया था। जब उसके लिये चारों तरफ खोजा, तो उनको अपनी झोपड़ी के बदले एक विशाल महल दिखाई दिया। जहाँ कहीं देखा, मोति, मणि, जवाहरात वगैरह, बिखरे हुये थे। कीमती पोशाकें भी रखी हुई थीं।

तब उनको मालूम हुआ वह बूढ़ा कौन था। उन्हें यह जान कर बहुत दुःख हुआ कि जिसने उनका इतना उपकार किया था, वह उनको बिना दीखे ही चला गया था।

तब से दान-धर्म करते हुये वे दोनों उस महल में सुख-पूर्वक रहने लगे।





एक छोटे गाँव में लक्ष्मण नाम का एक गरीब नौजवान रहा करता था। उसके न माँ-बाप थे, न और कोई सम्बन्धी ही। उसका पेशा भी कुछ न था।

भोजन के बाद गाँव के बड़े बूढ़े, पीपल के पेड़ के नीचे, हुक्का पीते-पीते गप्पें लगा रहे थे।

बातों-बातों में गरीब लक्ष्मण पर भी बातें होने लगी।

उसको कोई काम दिखा कर, घर-बार वाला बना देना उन लोगों ने अपनी जिम्मेवारी समझी। उसके लिये उन्होंने एक काम भी ढूँढ निकाला।

उन लोगों ने लक्ष्मण से कहा कि अगले दिन से वह गाँव में रहनेवाले सौ कुटुम्बों को, एक एक बहङ्गी के हिसाब से, तालाब में पानी लाकर दे दिया करे। इस काम के बदले रोज उसे एक-एक कुटुम्ब भोजन दिया करेगा। उन लोगों ने मिल कर उसके लिये एक झोंपड़ी भी बना दी।

तब से लक्ष्मण सवेरे से शाम तक गाँव के घरों में पानी ला लाकर देता रहता। कुछ दिनों बाद जब पीपल के पेड़ के नीचे गाँव के बड़े बूढ़े इधर-उधर की बातें कर रहे थे; लक्ष्मण भी उनको सुनता पास बैठ गया। रात का समय था।

उस गाँव के एक बहुत पुराने शिवालय के बारे में बातचीत शुरू हुई। एक बूढ़े ने कहा कि उस मन्दिर के एक शिलालेख में एक बहुत ही विचित्र बात लिखी हुयी है।

शिलालेख में लिखा हुआ था-"जो कोई लिङ्ग का १५० घड़ों के पानी से अभिषेक करेगा, वह अवश्य ही चक्रवर्ती बनेगा।"

रामेश्वर दयाल

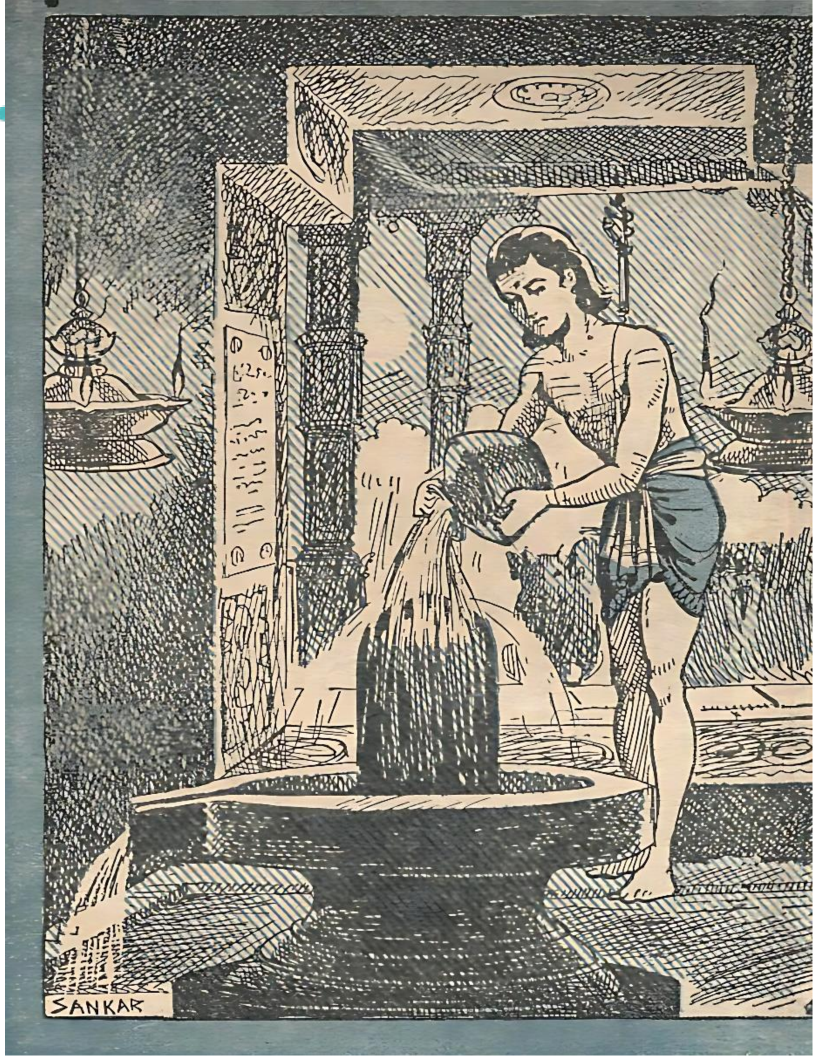
बड़ों में से एक ने कहा कि बह सब झूठ है। एक सौ पचास घड़ों के पानी से अभिषेक करने से ही अगर कोई चक्रवर्ती बन जाय तो हर कोई वह काम कर सकता है और चक्रवर्ती बन सकता है।"

कुछ देर तक बहस चलती रही। तब दूसरे एकत्रित व्यक्तियों ने भी यह मान लिया कि शिलालेख झूठ ही हो।

बहस को सुनने के बाद लक्ष्मण को रात में नींद नहीं आई। वह प्राचीन शिलालेख भला कैसे झूठ हो सकता है, वह सोचने लगा। उसको यकीन हो गया कि क्योंकि उन लोगों में तालाब से एक सौ पचास पानी से भरे घड़ों को लाने की ताकत नहीं थी इसीलिये ही वे वैसी ऊटपटाङ्ग बातें कर रहे थे।

"मेरा पेशा ही पानी ढोना है। एक सौ पचास घड़े लाकर उस शिवलिङ्ग का अभिषेक करूँगा। अगर शिलालेख ठीक हुआ तो चक्रवर्ती बन जाऊँगा। नहीं तो शिवलिङ्ग के अभिषेक करने का तो पुण्य मिलेगा ही।" लक्ष्मण ने सोचा।

अगले दिन, गाँव में पानी देने के बाद, लक्ष्मण ने शिवलिङ्ग का अभिषेक शुरु किया।



एक दो तीन...! गिन-गिन कर उसने लिङ्ग के सिर पर पानी के घड़े उड़ेलने शुरू किये।

एक सौ चालीस घड़े उड़ेलने के बाद लक्ष्मण थक गया। थकान के कारण पैर लड़खड़ाने लगे। बस, दस घड़ें ही तो बाकी हैं, उसने अपने को ढाढ़स बँधाया, और जैसे तैसे फिर पानी लाने गया।

परन्तु आठ घड़ों के लाने के बाद, उसकी टाँगे जवाब दे गईं। शिवलिङ्ग को देखकर, वह मन में सोचने लगा-

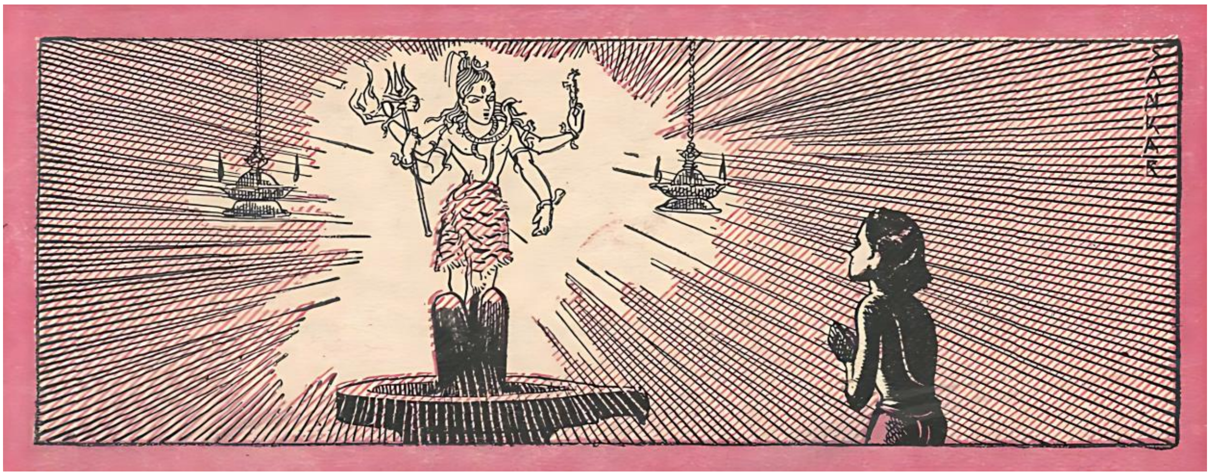
"एक सौ अड़तालीस घड़ों से अभिशेक करने पर भी, मुझ में अभी तक कोई चक्रवर्ती के लक्षण नहीं दिखाई देते। बुजुर्गों का कहना कि यह शिलालेख मिथ्या है, सच ही हो सकता है। मैं बुड़बुक हूँ, इसी कारण व्यर्थ इतनी मेहनत की है। खैर, जो हो गया सो हो गया। इस बार बहङ्गी में दो घड़े ला, शिवलिङ्ग के सिर पर दे मारूँगा। मैं उसके टुकड़े टुकड़े कर दूँगा।" वह जल्दी जल्दी उठा और गुस्से में तालाब से बहङ्गी भर पानी ले आया। उसने दोनों घड़ों को उठा कर, दाँत पीसते हुये, शिवलिङ्ग पर जोर से

दे पटका।

दूसरे क्षण, शिवलिङ्ग के दो टुकड़े हो गये और उसमें से त्रिशूलधारी शिव ने प्रत्यक्ष हो कर कहा-"ओ लक्ष्मण ! तू मूर्ख है ! तेरी अक्ल मारी गई है। जो कुछ करना हो उसे भक्ति और श्रद्धा पूर्वक करना बुद्धिमानों का लक्षण है। तेरी बेअक्ली के कारण अब तुझे फल न मिलेगा। अगर तू भक्ति से दो घड़ों के पानी से और अभिषेक करता तो सचमुच तू चक्रवर्ती बनने लायक हो जाता। खैर, अब तू यहाँ से जा। जा बाहर !"

लक्ष्मण सिर नीचा कर मन्दिर के बाहर जाने को ही था कि उसने पीछे मुड़ कर जो देखा तो शिव, और टुकड़े-टुकड़े हुआ शिवलिङ्ग वहाँ न थे।

बाद में, लक्ष्मण ने जाकर यह बात गाँव के बुजुर्गों से कही। वे जब आश्चर्य से यह मन्दिर में यह देखने गये तो न वहाँ शिवलिङ्ग था. न वह पत्थर ही, जिसपर वह घोषणा खुदी हुई थी।





बहुत दिन पहिले बगदाद शहर में अलि नाम का एक नाई रहा करता था। हजामत बनाने में वह बड़ा माहिर समझा जाता था। बागदाद के धनी, मानी, अलि से ही इजामत बनवाया करते थे।

एक दिन अलि को घर में ईन्धन की जरूरत पड़ी। लकड़हारों की तलाश में वह गली में खड़ा हो गया। कुछ देर बाद गधे पर लकड़ियाँ लादे एक लकड़हारे को उसने देखा। अलि ने उसे बुलाकर कहा- "भावताव करने के लिये मेरे पास वक्त नहीं है। गधे पर लदी सारी लकड़ी क्या पाँच रुपये में दे दोगे ?"

बगदाद में लकड़ी बहुत महङ्गी होती है। आसानी से मिलती भी नहीं। उस गरीब ने सोचा अच्छा भाव मिल रहा है। वह देने को राजी हो गया। गधे पर से उसने लकड़ियाँ उतार कर अपने पैसे माँगे।

"गधे पर से सारी लकड़ियाँ नहीं उतारी हैं। गधे की काठी के बारे में क्या कहते हो ? वह भी तो लकड़ी है। मैंने तो गदहे पर लदी सारी लकड़ी के लिये भाव दिया था।" अलि ने कहा।

"वाह, वह कैसे ?" लकड़हारे ने पूछा।

यह काठी भी तो लकड़ी की है। गधे पर लदी सारी लकड़ी के लिये मैंने पाँच रुपये देना मञ्जूर किया था।" अलि ने फिर कहा।

"भला यह क्या भाव है ? मैं इस भाव पर हरगिज़ न दूँगा।" लकड़हारे ने जिद पकड़ी। यह सुन अलि ने लकड़हारे के गाल पर दो जमा दिये। काठी छीनकर उसको चलता किया।

अहमदुल्लाह खान



चोट खा हाय हाय करते लकड़हारे ने पञ्चायतदार से शिकायत की। क्योंकि पञ्चायतदार की हजामत अलि बनाया करता था, उसने उसकी बात न सुनी।

तब लकड़हारे ने एक और बड़े पञ्चायतदार के पास जा रोना धोना शुरू किया। पर उसका नाई भी अलि था। लकड़हारे का रोना धोना उसने भी न सुना।

"मेरी मदद करने वाला कोई नहीं है। मेरी शायद यही गति है।" सोचता हुआ लकड़हारा घर की ओर चला। रास्ते में एक बूढ़ा मिला।

उसने पूछा-"बेटा, क्यों इतने दुःखी हो रहे हो ?" लकड़हारे ने अपनी दुःख भरी कहानी बूढ़े को सुनाई।

"अगर तूने खलीफ के पास जाकर फरियाद की, हो सकता है, वे इन्साफ करें।" बूढ़े ने लकड़हारे को सलाह दी।

लकड़हारा बूढ़े को तीन बार सलाम कर राजा के महल में गया। थोड़ी देर में वह खलीफा के सामने ले जाया गया। उसने खलीफा के पास जाकर जमीन छूकर सलाम किया। लकड़हारे ने जो गुजरा था कह सुनाया। खलीफा ने उसकी शिकायत पर गौर किया और कहा- "इन्साफ़ तो अलि की तरफ ही है। पर मैं तुझे एक तरतीब बताता हूँ। सुन। खलीफा ने लकड़हारे के कान में कुछ कहा।

कुछ दिन गुजर जाने के बाद लकड़हारे ने अलि के पास जाकर पूछा-"मेरी और मेरे दोस्त की हजामत बनाने का क्या लोगे ?"

"दो रुपये दोगे तो दोनों की हजामत बना दूँगा।" अलि ने कहा।

"अच्छा, तो पहिले मेरी हजामत बनाओ।"

उसका सिर साफ मूँड़ने के बाद अलि ने पूछा-"तुम्हारा दोस्त कहाँ है?"

"बाहर कहीं होगा। अन्दर ले आता हूँ।" कहता हुआ लकड़हारा बाहर गया और अपने गधे को अन्दर हाँक लाया। "यह है मेरा दोस्त ! करो हजामत।" लकड़हारे ने कहा।

"क्या ? गधे की हजामत बनाने के के लिये कहते हो ?" अलि ने आग-बबूले होते हुए पूछा।

लकड़हारे की हजामत करना ही बह बेइज्जती समझता था। गधे को देख कर तो वह उबल उठा। "यहाँ से जाओ ! वरना हड्डी पसली एक कर दूँगा।" अलि ने लकड़हारे को धमकी दी।

तुरन्त लकड़हारे ने खलीफा के पास जाकर अलि की शिकायत की। शिकायत सुन खलीफा ने सिपाहियों को अलि को पकड़ लाने के लिये कहा।

"इस आदमी की और उसके दोस्त की हजामत बनाने को मान कर बाद में तुम क्यों मुकर गये ? क्या वजह है ?" खलीफ ने पूछा।

अलि ने जमीन तक झुक सलाम कर कहा-"आपका कहना एकदम ठीक है। मगर एक आदमी का गधे का दोस्त होना या उसकी हजामत करवाना कभी सुना गया है ?"

"तेरा कहना ठीक है। पर क्या तूने लकड़ी के नाम पर काठी छीन लेना भी कभी सुना है? झट इस गधे की हजामत बनाओ।" खलीफा ने कहा।

अलि न बच सका। जब वह साबुन लगा कर गधे की हजामत बना रहा था तो दरबारी लोग ठठा मार कर हँसने लगे। अलि के इज्जत मिट्टी में मिल गई।

लकड़हारा खुशी खुशी घर चला गया।



CHANDAMAMA (Hindi) DEEPAVALI NUMBER 1954 Regd. No. M. 5452



रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – ६